श्री निम्बार्काचार्य परम्परा एवं आचार्यपीठ
के ही लोप हो सकने का अतीव भयानक संकट सम्मुख हैं।
जिन श्रीसर्वेश्वर प्रभु के प्रताप को हम सभी उपभोग करतें हैं उन

श्रीसर्वेश्वर प्रभु
श्रीनिम्बार्काचार्य परम्परा एवं आचार्यपीठ
की

मर्यादा रक्षा

का प्रश्न उपस्थित हैं।
कृपया धैर्यपूर्वक इसका अध्ययन मनन करके सम्प्रदाय
की रक्षा हेतु अपना मत स्थिर करें।

प्रकाशक
श्रीनिम्बार्क परिषद

संरक्षक

महन्त श्रीयुगलशरण जी

पाटनारायण धाम, गिरिवर आबू रोड़, सिरोही

परामर्शदाता

महन्त नारायणशरण जी सिद्धपुर

लेखक

अमित शर्मा

जयपुर

सम्पादक

पद्मनाभ शरण

जयपुर

अनुक्रम

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य

महानुभाव !
श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय अनादि वैदिक सत्सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित शास्त्र समन्वय व सामंजस्य परिपोषक सदाचार प्रधान सत्सम्प्रदाय हैं। यह सम्प्रदाय वैदिक सदाचार एवं मर्यादाओं के पालन पर अचल निष्ठा रखता हैं। इनके विपरीत स्वेच्छाचार का व्यवहार करना सम्प्रदाय में निषिद्ध माना गया हैं। इन मर्यादाओं का उल्लंघन करने वालों को यह सम्प्रदाय परम्परा "नग्न एवं पातकी" ही मानती हैं। इन मर्यादाओं का पालन करने वाले ही श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यपद पर आसीन होते हैं। सुयोग्य – विरक्त – शास्त्रज्ञ – स्वसम्प्रदाय सिद्धांत एवं उपासना पद्वत्ति के ज्ञाता – सदाचारी – स्वयंपाकी – श्रीसर्वेश्वर सेवा परायण शास्त्रनिष्ठ – नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्राह्मण ही श्रीनिम्बार्क संप्रदायाचार्य हो सकते हैं। ४८ वे श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज जी का समग्र जीवन इस सदाचार प्रणाली का अत्युत्तम उदहारण हैं।
सम्प्रदाय की यह सदाचरण प्रणाली निरन्तर प्रवाहमान रहे इसके लिए आचार्यश्री ने आचार्यपद के लिए श्रीकान्त इंदौरिया पुत्र श्रीबालमुकुन्द इंदौरिया को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। तथा उत्तराधिकारी के लिए नियत कर्तव्य तथा इनका उल्लंघन होने पर उत्तराधिकार स्वतः निरस्त होने का निर्देश अपने हाथों से इच्छापत्र में लिखकर उसे रजिस्टर्ड करवा दिया।

अत्यन्त खेद का विषय हैं कि सम्प्रदायोक्त आचार, विधि–निषेध, आचार्यपीठ के संविधान, इच्छापत्र के आलोक में जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज जी ने अपने जिन उत्तराधिकारी का चयन किया वे श्रीश्यामशरणदेव जी अत्यंत ही आचरणहीन सिद्ध हुए हैं। <u>श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की अक्षुण्ण परम्परानुसार – नैष्टिक ब्रह्मचर्य व्रत अनुपालन करते हुए पूर्ण विरक्तरूप से रहकर श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा – परिचर्या करने में अपरस में तत्पर रहना और स्वयंपाकिता का जो पूर्वाचार्य–परम्परागत निर्धारित विशिष्ठ नियम हैं उसका दृढ़ता पूर्वक परिपालन नितान्त रूपेण परम अनिवार्य हैं।</u> परन्तु इनके द्वारा नित्य ही इन मर्यादाओं व नियमों का उल्लंघन किया जाता हैं। अपरस, स्वयंपाक एवं श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा भी नहीं करना तथा भेष की मर्यादा का नाश करके विचित्र प्रकार से केश–विन्यास करके रहना आदि कर्म प्रकट हुऐ हैं। विभिन्न स्थानों से विभिन्न व्यक्तियों द्वारा इनके चरित्र विषयक अनेक व्यथा कथा उजागर की गई हैं।

इनके द्वारा इन मर्यादाओं के उल्लंघन की कुख्याति को सुनकर इनका नियमन

करने हेतु श्रीनिम्बार्क महासभा की एक बैठक श्रीपाटनारायण धाम, गिरवर, आबू रोड – सिरोही में दिनांक १२–१३ मार्च २०१८ को महन्त श्रीयुगलशरण जी महाराज की अध्यक्षता में आयोजित हुई। इस शिविर में स्वयं श्रीश्यामशरणदेवाचार्य जी तथा संप्रदाय के सभी वरिष्ठ संत–महंत, श्रीनिम्बार्क पीठ ट्रस्ट के ट्रस्टी एवं व्यवस्थापक उपस्थित हुए। इस मंत्रणा शिविर में सभी के द्वारा श्रीश्यामशरणदेवाचार्य जी को सद्विवेक कराया गया तथा इनके द्वारा विदेश गमन करने का संकेत उपस्थित होने पर सभी श्रुति–स्मृति शास्त्र आदि का प्रमाण देकर समुद्रपार विदेश यात्रा के लिए इन्हे स्पष्ट निषेध से अवगत करा कर म्लेच्छ देश गमन ना करने का निवेदन इनसे किया गया। इस पर इन्होने अपनी सहमति व्यक्त करते हुए शास्त्र मर्यादा पालन का संकल्प लेकर विदेश न जाने के प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर किये। परन्तु इन्हे स्पष्ट निषेध किये जाने पर भी ये साम्प्रदायिक कुलाचार तथा सनातन शास्त्र मर्यादा, आचार्यपीठ के संविधान द्वारा निर्धारित नियमों/मर्यादाओं का उल्लंघन करके दिनांक ६–७ अप्रैल २०१८ से दिनांक ०१–०५–२०१८ तक अमेरिका चले गये। ना ही तो श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा साथ लेकर गये और ना ही किसी भी परिकर को अपने साथ लेकर गये। (इस स्थिति में न तो अपरस तथा न ही स्वयंपाकिता का निर्वहन होना संभव हैं।) एक माह तक प्रकट रूप से श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा से विमुख रहे , अपरस–स्वयंपाकिता का निर्वहन तो आकाशकुसुम हैं।

वैदिक शास्त्र तथा श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के नियमों से म्लेच्छ देश गमन तथा निवास सर्वथा वर्जित हैं। तथा इस मर्यादा का उल्लंघन करने वाला पतित हो जाता हैं जिसके प्रायश्चित करने पर भी पदाधिकार लोप का कथन वेदादि–शास्त्र तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों में स्पष्टतया उल्लेख हैं।

इनके इस प्रकार शास्त्र विधि त्याग एवं सम्प्रदाय के परम्परागत कुलाचार के विरुद्ध आचरण को देखकर श्रीनिम्बार्क महासभा की आपातकालीन बैठक पुनः श्रीपाटनारायण धाम में ही 30 मई 2018 को हुई। इस बैठक में आचार्यपदासीन द्वारा शास्त्राचार व कुलाचार भङ्ग किये जाने तथा इस विचलन के प्रायश्चित का कोई विधान शास्त्र व साम्प्रदायिक ग्रन्थों में उपलब्ध न होने से महासभा ने सभी उपस्थित पदाधिकारियों श्रीनिम्बार्कपीठ न्यास के ट्रस्टी तथा पीठ के व्यवस्थापक की हस्ताक्षरित सर्वसम्मति से श्रीश्यामशरणदेवाचार्य जी को आचार्य पद के अयोग्य घोषित किया। इस विषय में सभी प्रकार की उचित कार्यवाही करने का निर्णय हुआ। श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ न्यास के न्यासियों ने पूर्वाचार्य श्रीश्रीजी महाराज की वसीयत की अनुपालना में श्रीश्यामशरणदेवाचार्य जी को क़ानूनी

नोटिस भेजकर विदेश गमन तथा अन्य मर्यादाओं के भंग करने पर आपत्ति प्रकट कर इनके विरुद्ध विधिक वाद संस्थित किया हैं।

सम्प्रदाय की लिखित मर्यादानुसार आचरण ना करने तथा वैदिक एवं साम्प्रदायिक निषेध जो म्लेच्छ देश गमन के विषय में हैं उनका उल्लंघन करने पर किसी प्रायश्चित के ना होने का विधान भी पूर्वाचार्यों द्वारा ही लेखबद्ध किये जाने के कारण श्रीश्यामशरणदेवाचार्य जी श्रीनिम्बार्काचार्य पद के अयोग्य हो चुके हैं तथा सम्प्रदाय के संतों, महंतों, श्रीमहन्तों ने सर्वसम्मति द्वारा इन्हें श्रीनिम्बार्काचार्य पद से निरस्त कर दिया हैं।
महाभाग !

विकट स्थिति आप के समक्ष स्पष्ट हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य परम्परा एवं आचार्यपीठ के ही लोप हो सकने का अतीव भयानक संकट सम्मुख हैं। सम्प्रदाय का यह आपत्तिकाल हैं इस समय सनातन धर्म की मर्यादा एवं कुलाचार की रक्षा हेतु आपका सहयोग इस कार्य को पूर्ण करने तथा समाज के संगठन के लिए अत्यंत अपेक्षित हैं। इस विषय में आपको विस्तार से अवगत कराने हेतु समस्त प्रमाणों को समाहित कर यह पुस्तक आपके समक्ष निवेदित हैं। कृपया धैर्यपूर्वक इसका अध्ययन मनन करके सम्प्रदाय की रक्षा हेतु अपना मत स्थिर करें।

महन्त श्रीयुगलशरण
श्रीपाटनारायण धाम,
गिरवर आबू रोड़
सिरोही – 307026
राजस्थान

महन्त बनवारीशरण
श्री गोपाल मंदिर
जूसरी, मकराना
नागौर – 341506
राजस्थान

महन्त वृन्दावनदास
श्रीअलि माधुरी कुटी
रमणरेती, परिक्रमा मार्ग
वृन्दावन, मथुरा 281121
उत्तरप्रदेश

अध्यक्ष
श्रीनिम्बार्क महासभा

प्रन्यासी
अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ प्रन्यास
श्रीनिम्बार्कतीर्थ, किशनगढ़, अजमेर, राजस्थान

निम्बार्क सम्प्रदाय का गठन तथा आचार्य परम्परा

वैष्णव चतुः सम्प्रदाय में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन अनादि वैदिक सत्सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्रीसुदर्शनचक्रावतार जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य है। इस सम्प्रदाय की परम्परा श्रीहंस भगवान से प्रारम्भ होती है। श्रीहंस भगवान ने प्रकट होकर श्री सनकादि महर्षियों की जिज्ञासा पूर्ति कर उन्हें श्रीगोपाल तापिनी उपनिषद के परम दिव्य पंचपदी विद्यात्मक श्रीगोपाल मन्त्रराज का गूढतम उपदेश तथा अपने निज स्वरुप सूक्ष्म दक्षिणावर्ती चक्राङ्कित शालिग्राम अर्चा विग्रह प्रदान किये जो श्रीसर्वेश्वर के नाम से व्यवहृत हैं। इसी मन्त्र का उपदेश तथा श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा श्री सनकादिकों ने देवर्षिप्रवर श्रीनारदजी को प्रदान की। निखिलभुवनमोहन सर्वनियन्ता श्रीसर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की मंगलमयी पावन आज्ञा शिरोधार्य कर चक्रराज श्रीसुदर्शन ने द्वापर अंत में इस धराधाम पर भारतवर्ष के दक्षिण में महर्षिवर्य श्रीअरूण के पवित्र आश्रम में माता जयन्तीदेवी के उदर से श्रीनियमानन्द के रूप में अवतार धारण किया। आपको देवर्षिप्रवर श्रीनारदजी से वैष्णवी दीक्षा में वही पंचपदी विद्यात्मक श्रीगोपालमन्त्रराज का पावन उपदेश तथा श्रीसनकादि संसेवित श्रीसर्वेश्वर प्रभु की अनुपम सेवा प्राप्त हुई। श्रीनारद जी ने श्रीनिम्बार्क को श्रीराधाकृष्ण की युगल उपासना एवं स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धांत का परिज्ञान कराया और स्वयं–पाकिता एवं अखंड नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रतादि नियमों का विधिपूर्वक उपदेश किया। यही मंत्रोपदेश–सिद्धांत, श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा तथा स्वयं–पाकिता का नियम और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन पूर्वक आचार्य परम्परा चली आ रही है।

३५ वें आचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य महाराज के द्वादश प्रमुख शिष्य हुए जिनके नाम से बारह द्वारा–गादी स्थापित हुई। जिनमें से श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी महाराज को उत्तराधिकार में श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा प्राप्त होने से प्राचीन परम्परानुसार श्रीनिम्बार्काचार्य पद प्राप्त हुआ तथा अन्य ग्यारह शिष्य द्वाराचार्य कहलाये। इन द्वादश द्वाराचार्यों तथा सोलहवें आचार्य श्री श्रीदेवाचार्यजी के द्वितीय शिष्य श्रीव्रजभूषणदेवजी की परम्परा में विराजित स्वामी श्रीहरिदास जी की शिष्य परम्परा से विशाल श्रीनिम्बार्क संप्रदाय का संगठन हैं।

निम्बार्कीय वैष्णव एक मत से अपना एकमात्र आचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी के पट्टशिष्य स्वामी श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी की गद्दी पर विराजमान होने वाले उत्तराधिकारी को ही मानते हैं। क्योंकि परम्परागत रूप से श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा

इसी पीठ में विद्यमान हैं तथा श्रीसर्वेश्वर प्रभु जिन्हें परम्परागत रीति से प्राप्त होते हैं वही जगद्गुरु श्रीनिम्बार्क पीठाधीश्वर कहलाते हैं। यह परम्परा सम्पूर्ण श्रीनिम्बार्क वैष्णव और चतुःवैष्णव संप्रदाय तथा षड्दर्शन से मान्य व प्रमाणित हैं।

वेदादि शास्त्र और निम्बार्क सम्प्रदाय

वेदान्त परिजात सौरभ, वेदान्त कौस्तुभ, वेदान्त कौस्तुभ प्रभा, दशश्लोकी, श्रीनारद नियमानन्द गोष्ठी रहस्य, वेदान्त रत्नमञ्जूषा, सिद्धान्तरत्नाञ्जलि आदि–आदि निम्बार्क–सम्प्रदाय के प्राण है, अतएव यह अपने को अनादि–वैदिक सम्प्रदाय' कह कर गौरव का अनुभव करती है। पूज्य पाद आद्याचार्य एवं अन्य पूर्वाचार्य चरणों ने जिस स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है – उसे श्रुति व स्मृति के वचनों से ही प्रमाणित किया है।

यदि कोई कहे––"मुमुक्षु के लिए वैदिक वर्णाश्रम धर्म अनावश्यक है" तो यह ठीक नहीं। ऐसा करने पर सर्वशास्त्रों से विरोध होता है। 'निम्बार्क सम्प्रदाय अपने–अपने वर्ण व आश्रम के अधिकारानुसार नित्य व नैमित्तिक कर्मों को भी भगवदाज्ञापालनात्मक भजन के रूप में करते रहने का आदेश देती है। जो कोई वैदिक मर्यादा को छोड़कर मनमानी अपनी रहनी सहनी बना लेते हैं, उनको निम्बार्क–सम्प्रदाय 'नग्न' कहती है –––

केचिदत्रवर्णाश्रमधर्माणां मुमुक्षुत्याज्यत्वं भावयन्ति,

तत्तुच्छं सर्वशास्त्रविरोधादप्रमाणकत्वाच्च।।

नित्यं नैमित्तिकं च स्ववर्णाश्रमाधिकारानुसारेणावश्यं

कर्तव्यं भगवदाज्ञापालनात्मकभजनरूपत्वात्।

'ऋग्यजुः सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज एतामुञ्झति

ये मोहात् स नग्नः पातकी स्मृतः।।

वेदान्त दशश्लोकी के ब्रह्मनिरूपणात्मक 'स्वभावतोऽपास्त समस्तदोषम्' इत्यादि श्लोक को श्रीपुरुषोत्तमाचार्यचरण 'वेदमाता गायत्री' की व्याख्या रूप मानते हैं। इनके ध्येय गायत्री के विषय भूत हैं। इस प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय में जो भी कुछ तत्त्व है उसका मूल वेदादि शास्त्र ही है। इससे विपरीत अर्थ को निम्बार्क सम्प्रदाय अपने में स्थान नहीं दे सकती।

पूर्वाचार्य चरणों ने वेद व शास्त्र को जो महत्व दिया है। उसके कतिपय उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

'शास्त्रयोनित्वात्' (ब्र.सू. 1/1/3)

का वाक्यार्थ करते हुए श्रीनिम्बार्क भगवान ने ब्रह्म ज्ञान का कारण शास्त्र को ही माना है। श्री श्रीनिवासाचार्यजी ने शास्त्र का वेद अर्थ किया है और सिद्धान्त पक्ष में वेद को ही ब्रह्म ज्ञान के लिए प्रमाण कहा है। अनुमानादि अन्य प्रमाण से उसकी असम्भवना प्रतिपादित की है। वेदादि शास्त्र श्री सर्वेश्वर प्रभु के निःश्वसित हैं, अतः ये अन्तरङ्ग हैं। अन्य कल्पित अनुमानादि बहिरङ्ग हैं।

वेदादि शास्त्रों को ही सर्वस्व व सर्वोपरि प्रमाण मान कर चलने व उपदेश करने वाले पूर्वाचार्य चरणों की इस महान परम्परा में जो कोई वेद विहित विधि निषेध को जञ्जाल समझ कर तिलाञ्जलि देने के लिए तत्पर हो उसे उन्मत्त ही समझना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को शास्त्रकारों ने नास्तिक संज्ञा दी है।

'नास्तिको वेदनिन्दकः' यह वचन प्रसिद्ध है।

वैदिक सदाचार परम्परा के पालन का नाम ही सम्प्रदाय हैं।

वस्तुतः हमारे यहाँ सम्प्रदाय शब्द बहुत उच्च स्थान रखता हैं। किसी ज्ञान काण्ड, किसी कर्म काण्ड, किसी उपासना काण्ड की अनादि अविच्छिन्न परंपरा का नाम सम्प्रदाय हैं। कोई उपासना, कोई ज्ञान, कोई कर्म मनमानी नहीं अविछिन्न आचार्य परम्परा के द्वारा जानकर उसका अनुगमन करना हमारी परम्परा हैं। परम्परा का नाम ही सम्प्रदाय हैं। हमारी परम्परा में जो बात प्रचलित हैं वह ही हमारे लिए परम इष्ट हैं।

उपनिषदों में **"इतिशुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विच्चक्षिरे"** अर्थात – हम धीर पुरुषों के सम्प्रदाय के आचार्यों की परम्परा को सुनते आये हैं, उसके आधार पर ही हम तत्व का निर्धारण करते हैं।" यह परम्परा या श्रीसर्वेश्वर प्रभु की उपासना श्रीहंस भगवान् ने श्रीसनकादिकों को, उनसे श्रीनारद जी को और श्रीनारद जी से श्रीनिम्बार्क महाप्रभु को प्रदान हुई। उनकी परम्परा से जो बात चली आती हैं हम उस सिद्धांत को मानते हैं क्योंकि हम परम्परावादी हैं। हम सम्प्रदाय निष्ठ हैं।

वेदादि शास्त्रों के सिद्धान्तानुसार श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में सदाचार की सर्वाधिक मुख्यता हैं। श्रीनिम्बार्क भगवान् ने 'सदाचारप्रकाश' नामक एक वृहद् ग्रन्थ का प्रणयन किया हैं। श्रीनिम्बार्क भगवान् ने 'ब्रह्मसूत्र' के **'अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ' (४/१/१६)** इस सूत्र के 'वेदान्तपारिजातसौरभ' नामक भाष्य में लिखा हैं ——

'विद्‌यारा‍ग्निहोत्रदानतपआदीनां स्वाश्रमकर्मणां निवृत्तिशंका नास्ति, विद्यापोषकत्वादनुष्ठेयान्येव। यज्ञादिश्रुतौ तेषां विद्योत्पादकत्वंदर्शनात्।'

इसी प्रकार ब्रह्मसूत्र के **'आचारदर्शनात' (३/४/३)** इस सूत्र के 'वेदान्त–पारिजात–सौरभ' भाष्य में श्रीनिम्बार्क भगवान् ने एवं 'वेदान्तकौस्तुभ' भाष्य में श्रीनिम्बार्क भगवान् के प्रमुख शिष्य पाञ्चजन्य शङ्खावतार तत्पीठाधिरूढ श्री श्रीनिवासाचार्यजी महाराज ने सदाचार–पालन का विशद उपदेश किया है ——

'वेदान्त–पारिजात–सौरभ भाष्य में——

'जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे'

इत्यादि श्रुतिभ्यो जनकादीनामाचारदर्शनात्।

तथा 'वेदान्तकौस्तुभ' भाष्य के–**'नेतरोऽनुपपत्तेः', भेदव्यपदेशाच्च', 'अनुपपत्तेश्च न शारीर'** इत्यादि सूत्रों के आधार पर **'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतननामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।', 'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ', 'प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः'** इत्यादि उभय भाष्यों के उद्धरण से सम्यक्रीत्या परिलक्षित है कि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में सदाचार पर कितना अधिक बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य साम्प्रदायिक प्राचीन–अर्वाचीन ग्रन्थों में सदाचार को परमावश्यक परिपालनीय कर्तव्य माना गया है।

दिग्विजयी श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीकेशवकाशमीरीभट्टाचार्य महाराज ने ब्रह्मसूत्रों पर अपने भाष्य "वेदान्त–कौस्तुभ–प्रभा" में **"सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात्' (३।४।२८) इस सूत्र की व्याख्या में भी "कामचारं निषिद्धं" की स्थापना करते हुए कहा हैं "स्वछन्दता निषिद्ध हैं।** मनुष्य को अपने आचार एवं आहार की पवित्रता के संरक्षण में नियम का त्याग साधारण अवस्था में कदापि

नहीं करना चाहिए।" इत्यादि सभी प्राचीन अर्वाचीन आचार्यों के वचन शास्त्र विधि का दृढ़ता पूर्वक पालन करने के ही प्राप्त होते हैं।

सभी आचार्यगणों द्वारा श्रीभगवान के इस वचन को ही परम इष्ट मानकर अपने अपने ग्रन्थों में स्वीकार किया हैं ——

"श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे या उल्लंघ्य प्रवर्तते।
आज्ञाभंगी मम द्वेषी नरके पतति ध्रुवम्।।"

श्रुति और स्मृति— ये दोनों मेरी आज्ञाएं हैं। इनका उल्लंघन करके जो मनमाने ढंग से बर्ताव करता है, वह मेरी आज्ञा—भंग करके मेरे साथ द्वेष रखने वाला मनुष्य निश्चित ही नरकों में गिरता है।

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज गीताजी के ही उद्धरण पूर्वक लिखते हैं ——

स्वाचार्यसंस्थापित—शास्त्रपूता, परम्परा पूर्णतमा विशुद्धा।
सा सेवनीया रसिकैः सुमक्तेः कदापि तर्को नहि कल्पनीयः।।
वेदादिशास्त्राण्यपहाय लोका निजेच्छया ये विचलन्ति मार्गात्।
कथन्नु तेषां सुखशान्तिलाभ स्तान्प्रापयाऽतो भगवन्सुमार्गम्।।

अपने पूर्वाचायों द्वारा संस्थापित जो परम पवित्र पूर्णतः विशुद्ध शास्त्रीय परम्परा है, श्रेष्ठ भक्त और परम रसिकजनों द्वारा उसी परम्परा का सेवन करना चाहिये। उसमें कदापि किसी प्रकार की तर्क को लेकर व्यर्थ उहापोह पूर्वक शास्त्र विपरीत भावना की कल्पना नहीं करनी चाहिये।

इसमें गीतोक्त

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र प्रमाणं ते कर्मकर्तुमिहार्हसि।।'

यह भगवद्वाक्य ही प्रमाण है।

जो लोग वेदादि शास्त्रों को छोड़ अर्थात शास्त्रीय विधि का परित्याग कर अपनी इच्छा से ही मनमानी पद्धति तैयार कर वास्तविक मार्ग से विचलित हो जाते हैं, उन प्राणियों को सुख शान्ति का लाभ कैसे प्राप्त हो सकता है। हे करुणार्णव श्रीसर्वेश्वर प्रभो ऐसे प्राणियों को भी सुमार्ग प्राप्त करने की कृपा करावें। इसमें भी गीता का

शास्त्रोक्त यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न स सिद्धिमवाप्नोति ने सुखं न परोगतिम्।।

यह भगवद्वाक्य ही प्रमाण है।

अतः सिद्ध हैं की श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय वेदादि शास्त्र की आज्ञा में ही रहकर धर्म पालन की शिक्षा देता हैं। तथा सामान्य वैष्णव ही नहीं अपितु स्वयं आचार्य को भी इन सभी नियमों विधि–निषेधों का दृढ़तापूर्वक अनिवार्य रूप से पालन करना आवश्यक हैं क्योंकि ———

अचिनोति च शास्त्रार्थं आचारे स्थापयत्यति।

स्वयमप्याचरेदस्तु स आचार्यः इति स्मृतः

जो स्वयं सभी शास्त्रों का अर्थ जानता है, दूसरों के द्वारा ऐसा आचार स्थापित हो इसलिए अहर्निश प्रयत्न करता है; और ऐसा आचार स्वयं अपने आचरण में लाता है, उन्हें आचार्य कहते है।

श्रीनिम्बार्क संप्रदायाचार्य होने की योग्यता

सुयोग्य – विरक्त – शास्त्रज्ञ – स्वसम्प्रदाय सिद्धांत एवं उपासना पद्दत्ति के ज्ञाता – सदाचारी – स्वयंपाकी – श्रीसर्वेश्वर सेवा परायण शास्त्रनिष्ठ – नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्राह्मण ही निम्बार्क संप्रदायाचार्य हो सकते हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य पद पर आरूढ़ होने की प्रमुख अहर्ता शास्त्रज्ञ होना तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पूर्वक अपरस में श्रीसर्वेश्वर प्रभु की नित्य सेवा करना, यह अनुलंघ्नीय मर्यादा हैं। जिसका अस्वस्थ होने अथवा अत्यंत वृद्धावस्था के इतर कथमपि व्यतिक्रम नहीं हो सकता। आचार्य "श्रीसर्वेश्वर प्रभु" की अर्चा स्वयं न करें कही प्रवास में पधारें तो श्रीसर्वेश्वर प्रभु उनके कंठ में न विराजे ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति की तो कल्पना ही परम्परा मार्ग में नही की जा सकती "श्रीसर्वेश्वर प्रभु" की यह प्रतिमा प्रातः स्मरणीय विद्यातपोनिष्ठ पूर्वाचार्यों द्वारा संसेवित तथा अति प्राचीन होने से अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। श्रीसर्वेश्वर प्रभु की इसी परम्परागत मर्यादा का सदैव पालन होता रहे तथा आचार्यपदासीन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक अपरस में स्वयंपाकिता का निर्वहन करते हुए सम्प्रदायोक्त समस्त विधि–निषेधों का परिपालन करते हुए ही अपने पद पर प्रतिष्ठित रह सकते हैं। इस मर्यादा के निर्वहन में किसी भी प्रकार के व्यतिक्रम होने पर पदासीन रहने का अधिकार निरस्त हो जाता हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ और श्रीनिम्बार्काचार्य के लिए एक विधान हैं जिसका पालन अनुलंघनीय हैं। श्रीनिम्बार्क पीठ के लेख–साहित्य– और अन्य अनेक स्थलों पर यह घोषणा श्रीआचार्यश्री द्वारा लिपिबद्ध करवाई गई हैं। यह परम्परा अपरिवर्तनीय हैं मनमुखी आचरण कदापि स्वीकार्य नहीं।

आचार्यपीठ से घोषित प्रकाशित मर्यादा का एक अंश ————

”अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की अतिपुरातन परम्परानुसार बाल ब्रह्मचारी विरक्त रूप में सदा सर्वदा स्वयं पाकिता का एवं श्रीसनकादि संसेव्य भगवान् श्रीसर्वेश्वर की नित्यार्चा का ढ़ृढ़ता से मर्यादा का परिपालन करते हुये श्रीनिम्बार्काचार्यपीठासीन रहे हैं। यह आचार्यपीठ की परम्परागत परम पालनीय अक्षुण्ण मर्यादा हैं। जो कदापि अवहेलनीय नहीं हैं। स्वयंपाकिता के नियमक्रम में अस्वस्थता किंवा वृद्धावस्था आदि परिस्थितियों में यथावसर परिवर्तन किया जाना अपेक्षित हो जाता हैं जो स्वाभाविक हैं। स्वस्थ होने पर पुनः प्रायश्चित आदि करके यथावत अपने उक्त नियम को पुनः प्रारम्भ करने की परम्परा हैं। ब्रह्मचर्यव्रत, विरक्त वैष्णव स्वरुप तो यावद्जीवन अखण्डरूपेण आचरणीय हैं। कदाचित यदि आचार्यपीठ के मर्यादा विपरीत कोई कार्य दृष्टिगोचर हो जाये तो तत्काल उसे अविलम्ब त्याग करके पुनः पीठ मर्यादानुसार सन्मार्ग का परिपालन हो। भविष्य में होने वाले उत्तराधिकारी पीठाचार्य जो हों आचार्यपीठ के संविधान में वर्णित नियमों के अनुसार अपनी जीवनचर्या को को शुद्ध आचार विचारपूर्वक दृढ़ता से निर्वाह करे। कदाचित इन नियमों की अवहेलना करे या मनमानी करे तो आचार्यपीठ के ट्रस्ट–संविधानानुसार ऐसी विषम अवस्था में उनका समाधान करना भी अपेक्षित हो जाता हैं जो मर्यादित हो। अतः आचार्यपीठ की परम्परागत पुरातन शास्त्रमर्यादित परम्परा ही आचरणीय है।”

४८ वें आचार्य श्री श्रीजी महाराज द्वारा नियुक्त उत्तराधिकारी

श्री श्रीजी महाराज ने मिति ज्येष्ठ शुक्ल ३ सोमवार वि० सं० २०५० – २४–०५–१९९३ के दिन अपना उत्तराधिकारी श्रीकांत शर्मा गौड़ इन्दोरिया पुत्र बालमुकुन्द शर्मा गौड़ इन्दोरिया को घोषित किया था। इनके पक्ष में एक उत्तराधिकार पत्र – इच्छापत्र – वसीयतनामा २६–०१–१९९९ को श्रीजी महाराज जी ने लिखा था। कालान्तर में अपने द्वारा नियुक्त उत्तराधिकारी की उत्तरोत्तर बढ़ती आचरणहीनता तथा मर्यादाहीनता को दृष्टिगत कर महाराजश्रीजी ने उक्त इच्छापत्र (वसीयतनामे) को निरस्त कर एक नया इच्छापत्र १२–०६–२००८ को लिखकर रजिस्टर्ड करवा दिया।

४८ वें आचार्य श्री श्रीजी महाराज द्वारा इच्छापत्र में उत्तराधिकारी के लिए नियत कर्तव्य तथा इनका उल्लंघन होने पर उत्तराधिकार स्वतः निरस्त होने का निर्देश

इस अंतिम इच्छापत्र में महाराजश्रीजी ने स्पष्ट लिखा हैं की ————
———— "श्रीकान्त शर्मा गौड़ इन्दोरिया, विरक्त नाम— श्रीश्यामशरण — **श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की अक्षुण्ण परम्परानुसार — नैष्टिक ब्रह्मचर्य व्रत अनुपालन करते हुए पूर्ण विरक्तरूप से** श्रीसनकादिक महर्षि परिसेवित पूर्वाचार्य—परम्परा से सम्प्राप्त गुञ्जाफलसम दक्षिणावर्ती चक्राङ्कित शालग्राम स्वरुप श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा — परिचर्या करने में अपरस में तत्पर रहे। और स्वयंपाकिता का जो पूर्वाचार्य—परम्परागत निर्धारित विशिष्ठ नियम हैं उसका दृढ़ता पूर्वक परिपालन नितान्त रूपेण परम अनिवार्य हैं, किन्तु उसकी अनुपालना अस्वस्थता, वृद्धावस्था आदि विशेष परिस्थितियों में संभव नहीं है ऐसी अवस्था में श्रीसर्वेश्वर प्रभु तथा श्रीराधामाधव भगवान् के जो विरक्त विप्र ब्रह्मचारी किंवा विप्र बाल ब्रह्मचारी सेवा में नियुक्त है उनके द्वारा निर्मित पक्का—कच्चा भगवत्प्रसाद अपरस में अथवा स्थिति अनुसार ग्राह्य हैं, किन्तु पुजारी द्वारा कच्चा — नैवेद्य अर्थात कच्ची भोग सामग्री श्रीसर्वेश्वरप्रभु के समर्पित नहीं होगी श्रीप्रभु के केवल पक्का—नैवैद्य (पक्की भोग सामग्री) ही अर्पित होने का प्रावधान हैं। कच्चा भगवत्प्रसाद जो श्रीराधामाधवप्रभु के पुजारियों द्वारा समर्पित किया हुआ उसे उपर्युक्त अवस्था में ले सकते हैं परन्तु वृद्धावस्था के अतिरिक्त सशक्त काल में स्वस्थ रहने या होने पर पुनः शास्त्रवर्णित प्रायश्चित्तादि कर्म सम्पादन पूर्वक पूर्वकथित श्रीसर्वेश्वरप्रभु की यथावत सेवा तथा स्वयंपाकिता के नियम पूर्णतः पालनीय हैं। श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के संविधान में उल्लेखित विधि—क्रमानुसार समस्त मर्यादाओं का अनुपालन करना परम कर्तव्य होगा।" ————

——— "दैवगति से हमारे पश्चात कदाचित चि० उत्तराधिकारी युवराज श्रीश्यामशरण का आकस्मिक तिरोधान हो जाये अथवा यह आचार्यपीठ के नियम—आचार—विचार, मर्यादा आदि के सर्वथा विपरीत अविवेकतापूर्ण आचरण करने पर प्रन्यासियों, वरिष्ठ महानुभावों के सद्विवेक कराने पर भी न मानने, अथवा विरक्त न रहने की स्थिति में इस उक्त आचार्यपीठ के पद पर बने रहने का

अधिकार युवराज श्रीश्यामशरण का निरस्त जावेगा, जिसे पदेन प्रन्यासीगण नियमानुसार निरस्त कर सकेंगे।" ———

——— "यदि यथार्थ में ही युवराज विरक्त न रहने किंवा सदाचार मर्यादा जो आचार्यपीठ की व्यवस्थित है उसके विपरीत आचरण करे तो निम्नाङ्कित व्यक्तियों—महानुभावों से आचार्यपीठस्थ प्रन्यासी वृन्द (ट्रस्टीगण) परामर्श पूर्वक अग्रिम कार्य—योजना निर्धारित आचार्यपीठ के संविधानानुसार सम्पादित करें।" ———

अपने अंतिम इच्छापत्र में महाराजश्रीजी ने बारम्बार आचार्यपीठ की मर्यादाओं एवं आचार्यपदासीन के आचार—नियम एवं विधि—निषेधों का वर्णन करते हुए इन विधि—निषेधों को अटल घोषित किया हैं एवं निर्धारित मर्यादा जो आचार्यपीठ की व्यवस्थित है उसके विपरीत आचरण करने पर आचार्यपदासीन के चयन को स्वतः ही निरस्त समझे जाने एवं नवीन आचार्य के चयन की प्रक्रिया को समुचित एवं विस्तृत रूप से लेखबद्ध किया हैं।

<u>सम्प्रदायोक्त आचार, विधि—निषेध, आचार्यपीठ के संविधान तथा इच्छापत्र के आलोक में वर्तमान उत्तराधिकारी की अयोग्यता</u>

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की अक्षुण्ण परम्परानुसार नैष्टिक ब्रह्मचर्य व्रत अनुपालन करते हुए पूर्ण विरक्तरूप में नहीं रहने सम्बन्धी अनेक कृत्य उजागर हुये हैं। चरित्र सम्बन्धी अनेक प्रकरण जिनका स्मरण करके भी हृदय कम्पित होता हैं प्रकट हुये हैं। इनकी सत्यता वाचिक रूप से तो प्रमाणित हुई हैं परन्तु यह मात्र दुष्प्रचार ही ना फैलाया गया हो अतः इन घटनाओं के प्रामाणिक साक्ष्य एकत्र करने का प्रयास सुचारु हैं।

श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा — परिचर्या करने में अपरस में तत्पर रहे, इस मर्यादा का नित्य ही हनन होता हैं। पीठ में रहते हुए भी कभी श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा नहीं करते। तथा यात्रा—प्रवास में भी श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा अपने कण्ठ में धारण कर साथ लेकर जाने का जो नियम हैं उसका भी सदा उल्लंघन ही करते हैं। नित्य प्रातः ८ से ९ बजे तक सोकर उठते हैं। संध्या—वन्दनादि नित्यकर्म, भगवद्सेवा आदि सभी कर्मों का लोप इनके द्वारा हो चुका हैं।

स्वयंपाकिता का जो पूर्वाचार्य–परम्परागत निर्धारित विशिष्ठ नियम हैं उसका दृढ़ता पूर्वक परिपालन नितान्त रूपेण परम अनिवार्य हैं, किन्तु उसकी भी अनुपालना नहीं होती। भ्रष्टाचरण की पराकाष्ठा में "ढाबे" पर भोजन सम्बन्धी प्रवाद भी अनेकतः सुनाई दिए हैं।

सत्य ही यह आचार्यपीठ के नियमों–आचार–विचार, मर्यादा आदि के सर्वथा विपरीत अविवेकपूर्ण आचरण कर रहे हैं। इनके इन अमर्यादित आचरणों एवं नियमों की अवहेलना के साक्षी "श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ प्रन्यास" के न्यासी स्वयं हैं। आचार्यपीठस्थ आचार्य–निवास की सात्विक व प्राचीन संरचना को महाराजश्री के धाम गमन के दूसरे ही महीने में तुड़वाकर पूर्ण पाश्चात्य शैली में परिवर्तित कर आधुनिक साज–सज्जापूर्ण बना दिया गया हैं। ट्रस्ट में एक पैसे की आय नहीं दी अपितु दो वर्षों में लगभग एक करोड़ के वाहन ले लिए गये। प्रन्यासियों के निरन्तर मना करने पर भी अनेक आर्थिक अनियमितताएं की गई।

जैसा की पहले बताया जा चुका हैं सम्प्रदाय में शास्त्र निर्धारित नियत कर्मों का परिपालन अनिवार्य हैं विशेषकर आचार्यपदासीन द्वारा को इन नियमों का व्यतिक्रम स्वप्न में भी अनुलंघनीय हैं। जो कदापि श्रीनिम्बार्काचार्य की परम्परागत आचार्य गादी पर आसीन नहीं रह सकता। इस स्थिति में इनका पीठासीन रहने का अधिकार विधिक रूप में स्वतः ही निरस्त हो गया हैं।

"प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः"

यह आचार्यपीठ पूर्ण विरक्त गादी हैं। इस गादी पर जब नये आचार्य विराजमान होते हैं तो उन्हें परम्परानुसार सम्प्रदाय के वरिष्ठ महन्त द्वारा उनके मस्तक पर श्रीसर्वेश्वर प्रभु को विराजित कर पाँच प्रतिज्ञा करवाई जाती हैं। तदन्तर तीनों अनी अखाड़ों के श्रीमहन्तों द्वारा चादर सत्कार होता हैं तब आचार्य पदाभिषेक विधि पूर्ण मानी जाती हैं। परन्तु इन्होने तथा इनके निजी परिकर ने ट्रस्टियों के निवेदन को भी अस्वीकार करके बिना श्रीसर्वेश्वर प्रभु को मस्तक पर धारण किये, श्रीवल्लभकुल के एक गृहस्थ आचार्य से शपथ विधि करवाई। निर्धारित पाँच प्रतिज्ञाओं में से भी तीन का ही मनमाने रूप से अधूरा वाचन किया। इस प्रकार विधिक रूप से भी इनका आरोहण शून्य हैं।

सम्प्रदाय के वरिष्ठ संत–महन्त तथा ट्रस्टी तत्समय विवाद की आशंका से आचार्यपीठ की मर्यादा रक्षण हेतु इनके इस कर्म को उस समय चुपचाप पी गये। जबकि तत्कालीन ट्रस्टी के रूप में विराजमान महन्त श्रीहरिवल्लभदास जी महाराज – रेनवाल, ने अपने हस्ताक्षर करने से मना कर दिया था तो ट्रस्टी श्रीबनवारीशरण जी – जूसरी, ने उन्हें यह कहकर मनाया की इस समय घर में विवाद होने से जगत में सम्प्रदाय तथा आचार्यपीठ की हंसी होगी। तब महाराज जी ने हस्ताक्षर किये।

पूरे वर्ष इनकी मनमानी तथा स्वेच्छाचार चलता रहा तथा ट्रस्टी और व्यवस्थापक इनके सुधरने की प्रार्थना श्रीसर्वेश्वर प्रभु से करते रहे।

एक वर्ष पश्चात जब बड़े महाराजश्री का प्रथम निकुञ्ज–वास उत्सव मनाया जा रहा था तब पीठ के व्यवस्थापक बाबा माधवशरण जी, सचिव ओमप्रकाश जी ने आचार्यपीठ के न्यासी महन्त श्रीवृन्दावनदास जी तथा अन्य महानुभाव महन्त श्रीवृन्दावनबिहारी दास जी काठिया – सुखचर और श्रीगोपालशरण जी – गोलोकधाम श्रीवृन्दावन से स्थिति की विकटता तथा इनके स्वेच्छाचार पूर्वक आचरण तथा मर्यादाओं के सर्वथा हनन किये जाने की बात बताई। तब इन तीनों महानुभावों ने वहाँ उपस्थित महन्त श्रीनारायणशरण जी सिद्धपुर, से चर्चा करके वयोवृद्ध महन्त श्रीयुगलशरण जी महाराज, पाटणारायण धाम, गिरवर, आबूरोड के समक्ष सम्पूर्ण भयावह स्थिति वर्णित कर उचित हस्तक्षेपपूर्वक बात सँभालने के लिए निवेदन किया।

महानुभावों द्वारा सद्विवेक कराया जाना

इनके द्वारा मर्यादाओं के उल्लंघन की कुख्याति को सुनकर इनका नियमन करने हेतु श्रीनिम्बार्क महासभा की बैठक श्रीपाटनारायण धाम, गिरवर, आबू रोड – सिरोही में दिनांक १२–१३ मार्च २०१८ को महन्त श्रीयुगलशरण जी महाराज की अध्यक्षता में आयोजित हुई। इस शिविर में संप्रदाय के अनेक वरिष्ठ संत– महन्त तथा आचार्यपीठ के ट्रस्टी–व्यवस्थापक सहित स्वयं श्रीश्यामशरणदेवाचार्य जी भी पधारे। श्रीसर्वेश्वर प्रभु के स्वागत–दर्शन को आतुर सभी उपस्थित जनों को आघात लगा जब यह सुना कि आचार्य श्रीसर्वेश्वरप्रभु को साथ लाये बिना ही आये हैं। सभी के लिए यह स्वीकार करना कठिन था की आचार्य यहाँ तीन दिन रहेंगे

और श्रीसर्वेश्वर प्रभु वहां आचार्यपीठ में ही छोड़ आये। जबकि मर्यादा यही हैं की आचार्य श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा स्वयं करते हैं तथा यात्रा–प्रवास में तो यह कल्पना ही नहीं की जा सकती की श्रीसर्वेश्वर प्रभु को कंठ में धारण किये बिना आचार्य कहीं चले जायें।

जबकि वहाँ श्री श्रीजी महाराज जी का अनेक बार ठहरना हुआ हैं। तब जो जो व्यवस्था होती थी तदनुरूप ही अबके भी पूर्ण अपरस की व्यवस्था की तैयारी की गई। सभी मसाले हाथ से पिसवाकर रखे गए, चाकी, जल आदि सभी व्यवस्था इसी प्रकार की गई की आचार्य स्वयं श्रीसर्वेश्वर प्रभु के सेवा सौंज करेंगे तो उन्हें किसी प्रकार कष्ट न हो। परन्तु यहाँ तो ऐसा खेदपूर्ण कार्य इनके द्वारा किया गया। तब भी मर्यादावश सभी चुप रहे।

अगला आघात इन्होने दूसरे दिन फिर दिया जब सभी के साथ पंगत में जा बैठे और भोजन करने लगे। श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा–स्वयंपाक तथा अपरस के अनुलंघनीय नियमों का सार्वजनिक उल्लंघन करके इन्होने उपस्थित सभी वरिष्ठ संतों–महन्तों को मौन चुनौती दी की आप लोगों से जो बन पड़े आप कीजिये परन्तु हम जो मन करेगा वही करेंगे। अंदर ही अंदर सभी सन्त रो पड़े। फिर भी मर्यादा का ध्यान रख कुछ नहीं कहा गया।

शिविर में मंत्रणा के समय सभी ने एक स्वर से इनसे निवेदन किया की आप और कुछ मत कीजिये परन्तु हमारे श्रीजी महाराज ने जिस प्रकार आचार्यपद के विधि–निषेधों का पालन किया आप बस उतना ही करतें रहें हम उतने में ही आपके समक्ष नतमस्तक रहेंगे।

कोकिलावन वाले श्रीप्रेमदास जी महाराज, डूंगरपुर वाले श्रीराधिकादास जी महाराज तो बोलते बोलते इतने विह्वल हो गए की उपस्थित सभी व्यक्तियों की आँखों से अश्रुपात होने लगा। दोनों ने रोते रोते एक ही बात कही की "आप श्रीजी महाराज द्वारा सौंपे गए संप्रदाय की कीर्ति – ध्वजा को अगर और अधिक ऊँचा न भी कर सकें तो कोई बात नहीं बस उसे मजबूती से ही थामें रखें। यदि कहीं आपको यह लगे की आपके चरणों के नीचे से धरती हट रही हैं तो वहाँ आपके चरणों में धरती के स्थान पर हमारे शीश रहेंगे पर हम आपको डगमगाने नहीं देंगे।"

अपने अध्यक्षीय भाषण में महन्त श्रीयुगलशरण जी महाराज ने कहा कि षड्दर्शन में एक भी आचार्यपदासीन व्यक्ति समुद्र लंघन तथा म्लेच्छ देशों की यात्रा नहीं किये हैं क्योंकि यह शास्त्रों में वर्जित हैं। यदि किसी ने ऐसा किया हैं तो उन्हें अपने पद का त्याग करना पड़ा हैं। विभिन्न उदाहरण प्रमाण भी उन्होंने अपने उद्बोधन में उपस्थित किये। और भी सभी उपस्थित वरिष्ठजनों ने इन्हे सद्विवेक कराने का प्रयास किया। इस पर इन्होने अपनी सहमति व्यक्त करते हुए शास्त्र मर्यादा के पालन का संकल्प लेकर विदेश न जाने के प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर किये। स्वयं श्रीयुगलशरण जी महाराज ने इन्हे एकांत में अपने कक्ष में बैठाकर कई प्रकार से समझाकर मर्यादित रहने हेतु निवेदन किया।

कालीमापूर्ण सूर्य

अंततः श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के इतिहास में वह कालीमापूर्ण सूर्य भी उदित हुआ जब ८०–१०० वर्ष की आयु प्राप्त वरिष्ठ संतों द्वारा रो–रो कर किये गये निवेदन, संतों–महन्तों आचार्यपीठ के प्रन्यासियों के मर्यादा संरक्षण के प्रयास, सभी को छिटकाते हुऐ वर्तमान आचार्यपादासीन परम्पराओं के मस्तक पर पदाघात करते हुऐ संयुक्त राज्य अमेरिका जाने वाले विमान में एकाकी ही जा चढ़े।

जबकि एक महन्तजी महाराज ने एअरपोर्ट पर भी इनको फोन करके निवेदन किया कि – आप ऐसा अनर्थ ना करें। आप वापस लौट जाएँ, यह आपका विदेश जाना अनर्थ हो जाएगा। परन्तु इन्होने उनके निवेदन को भी नहीं माना और म्लेच्छ देश गमन निषेध की शास्त्रीय वर्जना को तोड डाला।

स्पष्ट निषेध किये जाने पर भी ये आचार्यपीठ के संविधान द्वारा निर्धारित नियमों/मर्यादाओं का उल्लंघन करके दिनांक ६–७ अप्रैल २०१८ से दिनांक ०१–०५–२०१८ तक अमेरिका चले गये। ना ही तो श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा साथ लेकर गये और ना ही किसी भी परिकर को अपने साथ लेकर गये । (इस स्थिति में न तो अपरस तथा न ही स्वयंपाकिता का निर्वहन होना संभव हैं।) एक माह तक प्रकट रूप से श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा से विमुख रहे, अपरस–स्वयंपाकिता का निर्वहन तो आकाशकुसुम हैं।

क्या किसी ने कल्पना भी थी कि आचार्य वेदादि शास्त्र की आज्ञा के विपरीत समुद्र लंघन पूर्वक म्लेच्छ देश में चले जायेंगे ?

क्या किसी को कल्पना भी हो सकती हैं कि श्रीसर्वेश्वर प्रभु की स्वयं सेवा करने की अनुलंघनीय मर्यादा को छोड़ एक माह तक म्लेच्छ देश का वास कर सकते हैं ?

क्या कल्पना भी की जा सकती हैं कि अकेले बिना किसी परिकर के स्वयंपाकी रहने की अटल परिपाटी किस प्रकार निभ सकती हैं ?

क्या कल्पना भी की जा सकती हैं की समस्त श्रुति–स्मृति तथा सम्प्रदायोचित सनातन मर्यादा को आचार्यपादासीन व्यक्ति मात्र अपनी स्वेच्छाचारिता के वशीभूत होकर एक झटके में भू–लुण्ठित कर अट्हास करें ?

श्री निम्बार्क महासभा का प्रस्ताव

जिसने यह सुना वही जड़ हो गया। इनके द्वारा शास्त्र विधि त्याग एवं सम्प्रदाय के परम्परागत कुलाचार के विरुद्ध आचरण को देखकर संप्रदाय के वरिष्ठ महानुभाव किंकर्त्तवविमूढ़ अवस्था से बाहर निकलकर भग्न हृदय लिए पुनः श्रीपाटनारायण धाम में दिनांक ३०–०५–२०१८ को उपस्थित हुए जहाँ श्रीनिम्बार्क महासभा की आपातकालीन बैठक करके सभी ने एक स्वर से कहा कि – " न ये शास्त्र मर्यादा को स्वीकार करते हैं। ना आचार्यपीठ के संविधान में उल्लेखित विधि–नियमों की पालना करते हैं। तथा ना ही श्री श्रीजी महाराज द्वारा अपने अंतिम–इच्छापत्र में लिखित अनुलंघनीय परम्परागत–मर्यादा–नियम का निर्वहन करते हैं। इस प्रकार भ्रष्टाचरण करने, मर्यादा, विधि–नियमों के प्रतिकूल कृत्य कारित करने एवं प्रन्यासियों, वरिष्ठ महानुभावों, संतों महन्तों द्वारा सद्विवेक कराने पर भी उनकी अवहेलना कर निरंतर मर्यादाहीन आचरण ही करने की स्थिति में श्रीश्यामशरणदेव इस उक्त आचार्यपद पर बने रहने के अधिकारी नहीं रह गये हैं। अतः सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर इन्हें श्रीनिम्बार्क संप्रदाय के आचार्य पद के लिए अयोग्य घोषित किया जाता हैं।"

महन्त श्रीयुगलशरण जी महाराज के प्रतिनिधि के रूप में महन्त श्रीनारायणशरण

जी सिद्धपुर, तथा आचार्यपीठ न्यास के न्यासीगण महन्त श्रीबनवारीशरण जी, महन्त श्रीवृन्दावनदास जी एवं वैष्णव साधक श्रीपद्मनाभशरण श्रोत्रिय द्वारा सम्पूर्ण भारतवर्ष के समस्त वैष्णवाचार्यों, श्रीशंकराचार्य वृन्द तथा अनेकों संतो/महन्तों/श्रीमहन्तों, अखाडा परिषद् के पदाधिकारियों से प्रत्यक्ष तथा पत्राचार द्वारा सम्पर्क कर स्थिति निवेदित करने पर समस्त आचार्यों व संतो ने इस धत्कर्म की भर्त्सना की तथा इस शास्त्रविरुद्ध कार्य के कारण इन्हे अयोग्य बताकर पूर्ण सहयोग प्रदान करने का आश्वासन प्रकट किया। सभी ने परम्परागत रीति, आचार्यपीठ न्यास के विधान तथा श्री श्रीजीमहाराज के अंतिम इच्छापत्र के अनुसार इन्हे हटाकर नये आचार्य को पीठासीन करने की समुचित कार्यवाही करने का निर्देश दिया हैं।

समुद्र पार यात्रा तथा मलेच्छ देश निवास सर्वथा ही शास्त्र विरुद्ध आचरण हैं।

इनकी विदेश यात्रा श्रुति–स्मृति शास्त्र ही नहीं अपितु जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज द्वारा लिखित इच्छापत्र के भी उलंघन पूर्वक हुई हैं जिसमें आचार्यश्री ने मात्र भारत–वर्ष के ही विभिन्न अंचलों की मर्यादित यात्रा का विधान किया हैं। जबकि ऐसा कोई उदाहरण पूर्वकाल का उपस्थित नहीं हैं। अपितु षड्दर्शन में जो भी आचार्य समुद्र पार यात्रा से विदेश गमन किये हैं उन्हें अपने पद का त्याग करना पड़ा हैं। पुरीपीठाधीश्वर श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ जी शंकराचार्य श्री सत्यमित्रानन्द जी महाराज तथा श्रीरामानंदाचार्य श्रीशिवरामाचार्य जी महाराज के प्रकरण प्रमाण हैं की समुद्र–लंघन के पश्चात आचार्यपद पर बने रहने की योग्यता नहीं रहती। अपने पद का त्याग करना ही पड़ता हैं।

समुद्रपारम्लेच्छदेश गमन का निषेध क्यों

जैसा की वर्णित हुआ हैं चातुर्वर्ण्य को निज निज अधिकारानुसार नित्य–नैमित्तिक कर्मों का अवश्य ही पालन करना चाहिए। तथा इन कर्मों के पालन में बाह्य–अभ्यन्तर शुद्धि का ध्यान रखना आवश्यक हैं। मानसिक शुद्धि, देहशुद्धि के

साथ साथ देश (स्थान) शुद्धि भी परम आवश्यक हैं। शुद्ध भूमि में ही कर्मानुष्ठान हो सकता हैं। पूर्वाचार्यवर्य श्रीकेशवकाशमीरिभट्टाचार्य जी ने श्रीमद्भगवद्गीता के "तत्व–प्रकाशिका" नामक भाष्य में श्रीभगवान के – **"शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।" इस वाक्य की टीका में** –

"शुचौ अशुचिभिर्म्लेच्छादिभिः संसर्गवर्जिते अशुचिवस्तुभिस्पृष्टे च स्वभावसंस्कारादिना शुद्धे देशे आत्मनः आसनं प्रतिष्ठाप्य प्रकर्षेण स्थापयित्वा"

म्लेच्छादिकों के संसर्ग से वर्जित , अपवित्र वस्तुओं के स्पर्श से रहित, और स्वभाव संस्कारादि से शुद्ध देश में, अपने आसन को ठीक रीति से जमावे। ऐसा अर्थ किया हैं।

भारतवर्ष स्वभावतः शुद्ध देश हैं तथा अन्यत्र देश भूमि स्वभावतः असंस्कारित अशुद्ध भूमि हैं। भारतवर्ष से अन्यत्र कर्मानुष्ठान संभव नहीं तथा कर्मानुष्ठान का लोप होने से अधिकार का लोप हो जाता हैं। तथा वैदिक कर्मानुष्ठान का स्वेच्छाचार पूर्वक लोप करने पर वह व्यक्ति स्वयं दूषित होकर सर्वविध अयोग्य हो जाता हैं।

भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र हैं

क्योंकि प्रकृत में कर्मभूमि का वर्णाश्रमानुसारी श्रौतस्मार्तधर्मानुष्ठान की भूमि ही अर्थ हैं। प्रत्यन्त (म्लेच्छदेशों) में उसका अनुष्ठान नहीं हो सकता। इसीलिए –

"तत्रापि भारतमेव वर्ष'–कर्मक्षेत्रम्" (श्री भा० ५।१७।११)

"वर्णाश्रमवतीभिभरतीभिः प्रजाभिः।।'' (५/१९/१०)

"अहो अमीषा किमकारि शोभनम् प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।

यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे। मुकुन्दसेवोपयिकं स्पृहा हि नः।।"

(श्री०भा० ५/१९/११)

'भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है। श्रीनारद ने वर्णाश्रमवती भारतीय प्राजाओं के द्वारा भागवतप्रोक्त सांख्ययोग के द्वारा भगवान् की आराधना कहीं है। देवता लोग कहते हैं कि भारतीय प्रजा ने कौन–सा पुण्य किया है अथवा भगवान् उन पर अपने आप

प्रसन्न हो गये हैं, जिससे उन्होंने भारत में मानव जन्म पाया है, जो कि मुकुन्दसेवा का उपायभूत है। हम लोगों को भी इसकी स्पृहा रहती है।'

वि० पु० में कहा गया है –

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।

स्वर्गावपर्गास्पदमार्ग भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरस्वात्।।"

देवता लोग भी भारतवासी लोगों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं – "जो देवता स्वर्ग एवं अपवर्ग प्राप्ति के मार्गभूत भारतभूमि में जन्म पाते हैं वे धन्य हैं।"

"कर्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि संन्नस्य विष्णौ परमात्मभूते।।

अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते, तस्मिल्लयं ते त्वमलाः प्रयान्ति।।"

"जानीम नैतत्क वयं निलीनाः, स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम्।।

प्राप्स्याम धन्याः खलु ये मनुष्याः, ये भारतेनेन्द्रियविप्रहीनाः।।

इस कर्मभूमि को प्राप्त कर कर्मफलों को भगवान् में अर्पित करके भगवत्पद को प्राप्त करनेवाले धन्य है। हम लोग स्वर्ग पद समाप्त होने पर कहाँ जायेगे, यह तो नहीं मालूम पर जो देव भारत में जन्म पा गये वे धन्य हैं।'

वँही आगे ये कहा है –

इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च लभ्यत।

न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ।।

(वि. पु. २।३।५)

अर्थात यहीं से स्वर्ग, मोक्ष, अन्तरिक्ष अथवा पाताल लोक पाया जा सकता है। इस देश के अतिरिक्त किसी अन्य भूमि पर मनुष्यों के लिए कर्म का कोई विधान नहीं है।

"अत्रापि भारतं श्रेष्ठ जम्बूद्वीपे महामुने।

यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ।।"

(वि. पु. २।३।२२)

जम्बूद्वीप में भारत ही श्रेष्ठ है; क्योंकि यही वेदोक्त वर्णाश्रमधर्म की भूमि है। इससे अन्य भोगभूमियाँ हैं। वहाँ अर्थ–कामपरायण ही अधिक होते हैं। यद्यपि अहिंसा, सत्य, दाम, दया भगवद्भक्ति आदि सार्वत्रिक धर्म हैं; तथापि उक्त धर्मों में उनकी प्रवृत्ति नहीं जैसी है। इसी दृष्टि से भोगभूमि कहा गया है।

"कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च गच्छताम्।

नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्या महामुने।"

(वि०पू० २।३।५)

अतः सम्प्राप्यतेस्वर्गौमुक्ति तस्मात्प्रयान्ति वै।

तिर्यक्त्वं नरकांचापि यान्त्यतः पुरुषा मुने।।"

(वि०पू० २।३।४)

"ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्यामध्ये शूद्राश्चभागशः।

इज्यायुधवाणिज्याध्येर्वर्तयन्ते व्यवस्थिताः।।

(वि० पु० २।३।६)

वर्णाश्रधर्म यहीं व्यवस्थित है। उक्त वचनों से स्पष्ट मालूम होता है कि भारत भूमि स्वभावतः पवित्र है। कर्मभूमि है, यज्ञीय देश है तद्भिन्त कर्मभूमि नहीं है, यज्ञिय देश नहीं है।

म्लेच्छ देश गमन तथा वास निषेध के श्रुति–स्मृति–पुराण तथा स्वसम्प्रदायोक्त प्रमाण

इस श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की उत्पत्ति श्रीहंस भगवान् से हैं जो साक्षात् परब्रह्म श्रीनारायण हैं जिनके निःश्वास उद्भूत वेद–श्रुति हैं। अतः पूर्वाचार्य एवं श्रुति प्रमाण के रूप में बृहदारण्याक की श्रुति हैं –––

"सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्य यत्रौसां दिशामन्तस्तद्रमयाञ्चकार तदासां पाप्मनो विन्यदधात्तस्मान्न जनमियान्नानन्मीयान्नेत्याप्मानं मृत्युमन्ववायानीति।।" (१/३/१०)

उस इस प्राणदेवताने इन वागादि देवताओंके पापरूप मृत्युको हटाकर जहाँ इन दिशाओंका अन्त है वहाँ पहुँचा दिया। वहाँ इनके पापको उसने तिरस्कारपूर्वक स्थापित कर दिया। अतः 'मैं पापरूप मृत्युसे संश्लिष्ट न हो जाऊँ' इस भयसे अन्त्यजनके पास न जाय और अन्त दिशामें भी न जाय।

श्रीअमोलकराम जी शास्त्री ने पूर्वाचार्य सम्मत भाष्य में लिखा हैं ——

"अन्तं पापजननिवासस्थानं दिगन्तरं नेयादिति"

दिशाओं के अन्त में जो पापजनों (कर्महीन) का निवास हैं वहाँ न जाये।

भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य जी महाराज ने भी इस श्रुति का अर्थ करते हुये कहा हैं कि –––

"श्रौतविज्ञानवजनावधिनिमित्त– कल्पितत्वाद्दिशां तद्विरोधि–जनाध्युषित एव देशो दिशामन्तः"

अर्थात दिशाओं की कल्पना श्रौतविज्ञानवान पुरुषों की सीमापर्यन्त ही की गई हैं, अतः उनसे विरुद्ध आचरणवाले लोगोंसे बसा हुआ देश ही दिशाओं का अन्त हैं।

"चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते।

म्लेच्छदेशः स विज्ञेय आर्यावर्त्तस्ततः परः।।'

(वि० स्मृ० अ ८४)

"जहाँ चातुर्वर्ण्यव्यवस्था नहीं होती, वह म्लेच्छ देश होता है। आर्यावर्त उससे भिन्न है।

उक्त वचन "न जनमियात्'–"नान्त्यमियात्' इस श्रृति तथा "कृष्णसारो मृगो यत्र चरति'। "म्लेच्छदेशस्त्वः परः" "एतान् द्विजातयो देशानाश्रयेरन प्रयत्नतः" का व्याख्याभूत ही है।

द्वितीय आचार्य श्री सनकादि महर्षिगण की आज्ञा हैं ——

"आचार्य उच्यते पूर्वमाचार्यश्च विशेषतः।

न कुर्यान्निन्दित कर्म न त्वयाज्य च याजयेत।।"

"न शुण्ठराज्ये निवसेन्नांधदेशे कथचन।।"

"न म्लेच्छतस्कराकीर्णे चातुर्वर्ण्यविवर्जिते।।"

"आर्यावर्त समुद्भूता शस्तास्ते सर्व एव हि।

चातुर्वर्ण्यक्रमो यत्र यत्र भागवता जना।।"

पूर्वाचार्य श्रीनारद ऋषि के श्रीनारदपंचरात्र का वचन हैं ––

यच्च भारतवर्षञ्च सर्व्वेषामिप्सितं वरं।

कर्मक्षेत्रं सतां संगीः प्रशस्यं पुण्यदमं परं"

"अन्यस्थाने सुखं जन्म निष्फलंच गतागतं"

"भारते च क्षणं जन्म सार्थकं शुभकर्मजं"

उपरोक्त का ही समर्थन करते हुऐ

"कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च।"

ब्रह्मसूत्र ३/१/८

की व्याख्या में भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य, श्रीनिवासाचार्य तथा श्रीकेशवकाशमिरीभट्टाचार्यजी ने "विशिष्टदेशजातिकुलरुपायुः" द्वारा विशिष्ट देश का संकेत करते हुए वर्णाश्रमधर्म का पालन करने वाले देश–कुल में जन्म लेने का वर्णन करते हुए भारत देश का ही बोध किया हैं। पूर्वाचार्य श्रीदेवाचार्य कृत बृह्मसूत्रों के भाष्य सिद्धान्त–जान्हवी की टीका सेतुका में श्रीसुन्दरभट्टाचार्य जी ने तथा इसी मंतव्य को स्पष्ट करते हुए श्रीपुरषोत्तमाचार्य जी ने अपनी "वेदान्तरत्न मञ्जूषा" में –

"कदचिल्ल्भते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात।

गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे"

वचन द्वारा भारतभूमि की ही महत्ता सिद्ध करते हुए इसी को कर्मभूमि घोषित कर इतर देश को दूषित बतलाते हुए तद्देश निवास निषिद्ध किया हैं।

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

श्री श्रीजीमहाराज ने अपने ग्रन्थ "भारत–भारती वैभवं" में भारतभूमि को ही एकमात्र परम सेवनीय तथा दूषित म्लेच्छ देशों में निवास की इच्छा को भी हेय बतलाया हैं तथा इसमें पूर्वाचार्य परम्परा तथा

शास्त्र को ही प्रमाण माना हैं। सम्पूर्ण धरा पर एकमात्र भारतवर्ष की भूमि ही परम रम्य हैं जो श्रीयुगल की अति मन भावनी हैं। यह वह पुण्य भूमि हैं जो शास्त्रों–ऋषियों–तथा देवताओं द्वारा भी स्तुत्य हैं तथा वंदना योग्य हैं –

वन्दे नितरां भारतवसुधाम् ।

दिव्यहिमालय–गंगा–यमुना–सरयू–कृष्णशोभितसरसाम्।।

मुनिजनदेवैरनिशं पूज्यां जलधितरंगैरंञ्चितसीमाम्।

धर्म का केंद्र तथा मुनि–देवजन अभिलाषित यही भूमि हैं –

वैदिकसंस्कृतिकेंद्रस्वरूपा नित्यं विबुधजनैरभिलाष्या।।

यही एकमात्र भूमि हैं जिसपर अपने परम धर्म में निष्ठ धर्माचार्य निवास करतें हैं तथा इस पवित्र भूमि से अन्य किसी भूमि पे वास करने की सोचते भी नहीं –

धर्माचार्यै धर्मसुनिष्ठै–, नितरां धीरैः परिसन्धेयम्।

ऐसा नहीं हैं की भारतवर्ष से इतर देश के निवासी ज्ञान पाने योग्य नहीं हैं। परन्तु जैसे पृथ्वीतल समस्त विश्व के सभी जनों के लिए शान्ति और सुख का विस्तार करता है ठीक वैसे ही ––

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः। स्वं स्वं चरित्रां शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवा:।" मनुस्मृति वचनानुसार इस भारतवर्ष से नित्य सत्प्रेरणा (मार्गदर्शन) भी हुआ करता है।

शान्तिं सुखम भुवि तनोति यथा जनेभ्यः,

सत्प्रेरणामपि करोति तथैव नित्यम्।

एतादृशं निखिलदानपरं प्रसिद्धं,

वन्दे च तं रुचिरभारतवर्षदेशम्।।

शास्त्र में जो निर्देश किया हैं वही करना परम कर्तव्य हैं। जीवों के लिये इस भूमि की संस्कृति तथा परम्परा ही परम सेवनिय है, इतर राष्ट्रों की सभ्यता एवं संस्कृति का सर्वथा परित्याग ही परम आवश्यक हैं –

युवकै मुख्यतो देशे सेवनियौत्मसंस्कृतिः ।

हातव्ये परराष्ट्राणां सभ्यता – संस्कृति सदा।।

शास्त्रविधि न हातव्यो यः सर्वमङ्गलप्रदः ।

तद्राहित्येन हानिः स्यादित्यत्र नास्ति संशयः।।

यह सुस्थापित विधि हैं की इस पवित्र भारतभूमि का नित्य सेवन ही मङ्गलकारी हैं, अन्य पाश्चात्य म्लेच्छ देशों के पथ की ओर तो भूलकर भी नहीं देखना चाहिए क्योंकि उस भूमि का वातावरण एवं वहाँ उपजी संस्कृति असेवनिय हैं –

पाश्चात्यपथमादायौचरन्ति ये जना द्रुतम।

भवन्तु सावधानास्ते तिष्ठन्तु स्वीयसंस्कृतौ।।

तपश्चर्या से जिनका उज्जवल स्वरुप परम पुण्य रूप है, ऐसे परम आस्थावान धर्मतत्वेत्ता आचार्यगण द्वारा निर्दिष्ट सुखप्रद जो मार्ग हैं वही हम सभी के लिए परम अनुसरणीय हैं। चूँकि भारत से इतर भूमि मलेच्छ भूमि हैं तो त्याज्य हैं क्योंकि बुद्धिमान व्यक्तियों का कर्त्तव्य हैं की वे दुस्सङ्ग का सर्वथा त्याग करदें तथा पवित्र सत्संग में ही स्वयं को प्रवृत करें। सर्वदा सर्वेश्वर श्रीहरि की उपासना तथा उन्ही का मङ्गलमय चिंतन अपने जीवन का कर्तव्य समझें। भारतवर्ष से इतर भूमि में श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा का लोप हो जाता हैं –

पूर्वजानां दृढ़ौस्थानां धर्मतत्वविदां सताम्।

तपसोज्ज्वलपुण्यानां ग्राह्यो मार्गः सुखप्रदः।।

दुस्सङ्ग सर्वथा त्याज्यः संसेव्या साधुसङ्गतिः।

अभिज्ञै नितरां लोकैः कर्तव्यमात्मचिन्तनम्।।

महाराजश्री ने अपने "भारत–कल्पतरु" ग्रन्थ में तो विदेश गमन को सर्वथा ही त्याज्य कहा हैं –

भारत वास सदा सुखदाई।

बहुविध तीरथ धाम यहीं पर, फिर क्यों धावत देश पराई।।

इस प्रकार समस्त पूर्वाचार्यों ने भारतभूमि को ही नित्य निवास योग्य तथा म्लेच्छ भूमि वास को वर्जित माना हैं।

हमारे वेदों – शास्त्रों में समुद्रपारम्लेच्छदेश गमन का निषेध किया गया है। म्लेच्छ देशों की समुद्रपार यात्रा पापकर्म बताया गया है। जो आचार्य/धर्माचार्य ऐसा करतें हैं वे आचार्य कहलाने योग्य हैं ?

अन्य प्रमाण भी देखें ————

म्लेच्छदेशः, पुं, (म्लेच्छानां देशः म्लेच्छप्रधानो देशो वा ।)

चातुर्व्वर्ण्यव्यवस्थादिरहित–स्थानम् । तत्पर्य्यायः । प्रत्यन्तः २ । इत्यमरः ।

२ ।१ ।७।।

भारतवर्षस्यान्तं प्रतिगः प्रत्यन्तः।

म्लेच्छति शिष्टाचारहीनो भवत्यत्र म्लेच्छः अल्। स चासौ देशश्चेति म्लेच्छदेशः।

किंवा म्लेच्छयन्ति असंस्कृतं वदन्ति शिष्टा–चारहीना भवन्तीति वा पचाद्यचि म्लेच्छा नीचजातयः तेषां देशो म्लेच्छदेशः।

अपि च, मनुः। २ ।२३ ।

"कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्ततःपरम् ।।

वेदों में म्लेच्छदेशगमननिषेध ——

न जनमियान् नान्तमियात् । बृहदारण्यकोपनिषद् (१।३।१०)

स्मृति में में म्लेच्छदेशगमननिषेध ——

विष्णुस्मृतिः/चतुरशीतितमो ध्यायः ——

न म्लेच्छविषये श्राद्धं कुर्यात् ।।८४.१।।

न गच्छेन्म्लेच्छविषयं ।।८४.२।।

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते ।

स म्लेच्छदेशो विज्ञेय आर्यावर्तस्ततः परः ।।८४.४।।

म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् (शङ्खस्मृतौ १४।३०),

पुराण में म्लेच्छदेशगमननिषेध ––

सिन्धोरुत्तरपर्यन्तं तथोदीच्यतरं नरः।

पापदेशाश् च ये केचित् पापैरध्युषिता जनैः।।

शिष्टैस् तु वर्जिता ये वै ब्राह्मर्णै वेदपारगैः।

गच्छतां रागसम्मोहात् तेषां पापं न नश्यति।।

(ब्रह्माण्डपुराणे ३।१४।८१,८२, वायुपुराणे २।१६।७०,७१)

असत्य भाषण एवं मूर्खतापूर्ण कूटयुक्ति

श्रीश्यामशरणदेव द्वारा अनेक स्थानों पर महानुभावों को कहा गया कि विदेश–गमन के लिए श्री श्रीजी महाराज जी ने आज्ञा प्रदान की थी। क्या आपके ह्र्दय में यह बात स्वीकृत होती हैं की आचार्यश्री शास्त्र–विरुद्ध कर्म की अनुमति प्रदान करेंगे ?

जब स्वयं आचार्यश्री अपने ही ग्रन्थों में विदेश गमन निषेध कर रहे हैं यहाँ तक की अपने इच्छापत्र में भी "मात्र भारत–वर्ष के ही विभिन्न अंचलों की मर्यादित यात्रा का विधान किया हैं।"

यह महाराजश्री के विराजमान रहते भी जब कभी विदेश गए तब भी आचार्यश्री को अन्धकार में रखकर ही गए। आचार्यश्री को कभी श्रीवृन्दावन कभी मूङ्गीपैठण अथवा कहीं अन्य स्थान का नाम लेकर प्रवास की स्वीकृति लेते और छिपकर विदेश चले जाते।

ऐसा असत्य भाषी जो महान आचार्यश्री पर ही शास्त्रविरुद्ध आचरण करने की आज्ञा प्रदान करने का मिथ्यारोप लगा रहा हैं, आचार्य बने रहने योग्य हैं ?

इनके द्वारा कूटयुक्ति पूर्वक मूर्खतापूर्ण कथन किया जाता हैं कि –

"जगद्गुरु का अर्थ होता हैं सम्पूर्ण जगत का गुरु। तो हमें समस्त जगत में भ्रमण का अधिकार हैं। यदि भारत तक ही सीमित रखना था तो भारत–गुरु कहना चाहिए जगद्गुरु क्यों ?"

यह हैं अपने आपको इस महान परम्परा का वाहक बताने वाले महानुभाव के ज्ञान का स्तर !!!!

जगत के पर्यायवाची हैं –

जगत–भुवनं–भूतं–चराचरं–ब्रह्माण्डं–वैष्ट्रं–विष्टपं–सधस्थं–संसरणं–विश्र्वं–लोकः–त्रिविष्टपं–अखिलंजगत–त्रिभुवनं–त्रैलोक्यं।

अब मात्र "पृथ्वी" ही, जिसपर भगौलिक सीमाओं के निर्धारण से देश–देशान्तर का निर्धारण होता हैं उस धरती तक "जगत" को संकुचित करना मूर्ख बुद्धि का ही परिणाम हैं।

ब्रह्म जगत के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हैं। और जगत हैं –

विविधविभक्तभोक्तृभोग्यसंयुक्त नियतदेशकाल फलोपभोगाश्रय प्रपञ्च जन्म आदि का समुच्चय। यह जगत कहलाता हैं।

तथा जो इस जगत के और इसके अभिन्ननिमित्तोपादान कारण श्रीसर्वेश्वर सम्बन्धी अविद्या जीव को व्याप्त हुई उस अविद्या के "गु" अर्थात अन्धकार को निवारण करके जो "रु" अर्थात प्रकाशित करे वह जगद्गुरु होते हैं। "आचार्यद्धयेव विदिता विद्या साधिष्ठं प्रापत' अर्थात् विद्या गुरु मुख से प्राप्त होने पर ही फलवती होती है"

इस विद्या को प्राप्त करने के लिए श्रीगुरुदेव की शरण में उनके निकट जाना चाहिए, ऐसा निर्देश सभी शास्त्रों में हुआ हैं। स्वयं श्रीभगवान ने कहा हैं –

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।4.34।।

श्रीगुरुजी के समीप जाकर उनकी सेवा करें तब वे तत्वज्ञानी महात्मा उचित जानकर उपदेश करेंगे, न कि गुरुजी देश–देश डोलते फिरे की हम आपके द्वार आये हैं आप हमसे उपदेश लीजिये।

शिष्य द्वारा श्रद्धापूर्वक अपने यहाँ आचार्य को निमंत्रित करने पर आचार्य का वहाँ पधारना सर्वथा उचित हैं। परंतु देश–काल–स्थान का विवेक तो रखना ही होगा। शिष्य कहे कि गुरुजी आप इस मल–मूत्र विसर्जन स्थल पर विराजिए तो क्या गुरुजी वहाँ विराजेंगे????

इसी प्रकार जिन देशों में गमन शास्त्र द्वारा वर्जित हैं वहाँ के शिष्यों को ही श्रीगुरु दर्शन के लिए गुरुस्थान पर आकर दर्शन करना सम्मत हैं ना कि गुरुजी का वहाँ जाना।

श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीभगवतपुरषोत्तमाचार्य जी महाराज अपने ग्रन्थ "वेदान्तरत्नमञ्जूषा" के तृतीय कोष्ठ में लिखते हैं कि "इस प्रकार की कूटयुक्तिओं की रचना कर श्रुति–स्मृति एवं सदाचार की परम्परा से चली आई भगवदाज्ञा के स्वेच्छया से उल्लंघन को जो उचित बताते हैं वे मूर्ख–दुःशील–नराधम हैं और नरक को जाते हैं।"

प्रायश्चित का अभाव

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी होते हैं। आचार्यपदासीन होने वाले ब्रह्मचारी विप्र को पदासीन होते समय आजीवन विरक्त बालब्रह्मचारी रहने की शपथ लेनी होती हैं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ यौन संयम ही नहीं होता इस सम्बन्ध में अनेक नियम–उपनियम

होते हैं जिनका पालन अनिवार्य हैं। यदि उपकुर्वाण ब्रह्मचारी से प्रमादवश कुछ शिथिलता हो जाये तो उसका प्रायश्चित का विधान हैं परन्तु नैष्ठिक ब्रह्मचारी के विषय में पूर्वाचार्य चरणों ने अपने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्यों में स्पष्ट किया हैं कि "नैष्ठिक–ब्रह्मचर्य धर्म में आरोहित हो जो व्यक्ति उससे च्युत होता हैं, उस आत्मघाती पातकी पुरुष के पुनः शुद्धि–लाभ करने का कोई प्रायश्चित दृष्ट नहीं होता हैं।"

ब्रह्मचर्य के साधारण नियम सहित आचार्यपदासीन के लिए पूर्ण विरक्त वेश सहित भोजन स्वयं पकाकर श्रीसर्वेश्वर प्रभु को भोग लगाकर प्रसाद पाने का नियम अटल नियम हैं।

या तो शिखा रखकर शेष मुंडित मस्तक तथा दाढ़ी–मूँछ को बनाकर रहे अथवा इन स्थानों के बाल बढाकर रहे। यह सदाचार एवं नियम विरुद्ध हैं कि इन स्थलों के केश आधे कतरे जाएँ, केश जब भी उतारे जाये पूरे ही उतारे जाये ना की उनकी छंटाई की जाए। शिखा का प्रमाण भी शास्त्रों में वर्णित गौ–खुर प्रमाण में ही हो, मनमानी प्रकार से नहीं। विरक्त वेश अनिवार्य हैं तो किसी भी प्रकार की धातुओं के आभूषण रत्नादि धारण नहीं किये जा सकते।

ये स्वयंपाकी नहीं।

ये श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा नहीं करते।

नित्य संध्या–वन्दनादि अनिवार्य कर्मों का लोप कर चुके हैं।

ये स्वर्णाभूषण रत्नादि धारण करते हैं।

केशादि का मनमाना प्रसाधन करते हैं।

नैष्ठिक तो क्या ब्रह्मचर्य के अन्य साधारण प्रतिबन्ध से भी ये च्युत हैं।

शास्त्र विरुद्ध समुद्र लंघन पूर्वक म्लेच्छ देश का एक माह निरन्तर वास इन्होने किया हैं।

आडम्बरपूर्ण जीवनशैली में अनुरक्त हैं। आचार्यपीठस्थ सात्विक प्राचीन शैली के आचार्य निवास को तुड़वाकर पाश्चात्य शैली का बनवाने में चालीस लाख से अधिक व्यय कर दिए।

अनेक सुविधापूर्ण वाहन होते हुए भी पदासीन होते ही ७० लाख की कार खरीद ली।

जबकि ट्रस्टी चेताते रहे कि ऐसा मत कीजिये, यह अपव्यव व आर्थिक अनियमितता हैं।

इस प्रकार न ये विरक्त हैं न शास्त्र विधि के अनुपालनकर्ता।

ब्रह्मसूत्र तृतीय अध्याय – चतुर्थ पाद सूत्र संख्या ४१ से ४३ की व्याख्या में जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य, श्रीनिवासाचार्य, श्रीकेशवकाशमीरी भटटदेवाचार्य आदि आचार्यगण कहतें हैं –

नैष्ठिक धर्म से च्युत का प्रायश्चित संभव नहीं हैं, क्योंकि प्रायश्चित का अभाव होने से उनका पतन कहा गया हैं। उपकुर्वाण ब्रह्मचारी, सन्यासी एवं वानप्रस्थियों का भी प्रमादवश ब्रह्मचर्य का भंग होने पर प्रायश्चित हो जाता हैं। परन्तु नैष्ठिक ब्रह्मचारी उपपातकित्व एवं महापात्कित्व दोनों स्थिति में अपने आश्रम से प्रच्युत होने से शिष्टजनों के द्वारा बहिष्कृत हो जाता हैं। क्योंकि "आरूढो नैष्ठिकम्" इत्यादि स्मृति वचन हैं और इसी प्रकार सदाचार भी हैं। ऐसे पथभ्रष्ट का शिष्टजन विद्योपदेश तथा सहभोजन आदि व्यवहारों में त्याग करते हैं। यद्यपि पाप के अपनोदन के लिए कतिपय वाक्यों द्वारा उनमें प्रायश्चित का उपदेश हैं, फिर भी कर्म में अधिकार सम्पादनकारिणी शुद्धि उनमें संभव नहीं हैं। क्योंकि उसके लिए प्रायश्चित का अभाव है। **"प्रायश्चित्तं न पश्यामि"** ऐसा स्मृतिवचन हैं। इसलिए प्रायश्चित करने पर भी उक्त प्रकारक शुद्धि के अनुरूप योग्यता के अभाव से उसमें ब्रह्मविद्या का अधिकार सम्भव नहीं है। जप आदि के द्वारा पारमार्थिक फलभागित्व होने पर भी व्यावहारिक योग्यता नहीं है, यही सिद्धान्त है।

ब्रह्मसूत्र २/३/४७ की टीका में "अंत्यजादेस्तु परिह्रयते" द्वारा अन्त जन एवं अन्त स्थान का शुचि अशुचि सम्बन्ध प्रयुक्त निषेध किया गया हैं।

दिग्गविजयी आचार्य श्रीकेशवकाशमीरिभट्टाचार्य जी ने श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ९ के श्लोक ३० की टीका में लिखा हैं – यद्यपि मेरे भक्त दुराचारी नहीं होते, तथापि यदि कदाचित् हों जिसको किसी जन्मान्तर के बलिष्ठ पाप से निषिद्ध,

वैदिकाचार विरोधी "अन्त्यज" आदि का शरीर मिला, अथवा जो उत्तम अधिकारवाले कुल में जन्म होने पर भी भगवान् के अपचारात्मक किसी बलिष्ठ पाप के कारण दुःसङ्ग में पड़ सत् सम्प्रदायोक्त शास्त्रीय सदाचार से पतित हो गया हो, वही पुरुष सुदुराचारी है। दोनों प्रकार से वह वैदिक आचार के अयोग्य हो जाता है।

"केन चिज्जन्मान्तरीयेण बलिष्ठेन

कर्मणा वैदिकाचारविरोधिनाऽन्त्यजादिसमुद्भवं शरीरं प्रापितः, उत्तमाधिकारार्हकुलजन्मापि केनचिबलीयसा भगवदीयापचारात्मकेन पापेन प्राप्तदुःसङ्गजन्यकर्मणा सत्सम्प्रदायोक्तशास्त्रीयसदाचारात्पतितो वा सुदुराचारशब्दवाच्यः। उभयथाऽपि सम्प्राप्तवैदिकाचारानर्ह इति यावत् । न तूत्तमाधिकारार्होऽपि यथेष्टाचारेण तर्तमानोऽत्र दुराचारी विवक्षितः, तस्यासुरकौटौ सन्निविष्टत्वात्।" तत्वप्रकाशिका ०६/३०

इसी में कथित "अन्त्यज" शब्द से वही कर्महीन पापक्षेत्र निवासी जन स्थानीय स्पष्ट हैं।

"अन्तं पापजननिवास्थानं दिगन्तरं नेयादिति"

दिशाओं का अंत स्थान पाप स्थान हैं तथा वहाँ के निवासी जन अन्त्यजन कहलाते हैं। कर्माधिकार से शून्य ऐसे जन को ही म्लेच्छ कहा गया हैं तथा ऐसे जन तथा ऐसे जनों के निवास सन्सर्ग से दूषित भूमि को म्लेच्छ देश कहा गया हैं। अन्त्यज/म्लेच्छ तथा उनके निवास स्थान दोनों ही के त्याग का निर्देश हैं तथा ऐसे जनों तथा ऐसी भूमि के वास से व्यक्ति सत् सम्प्रदायोक्त शास्त्रीय सदाचार से पतित होकर वैदिक आचार के अयोग्य हो जाता है।

पूर्वकाल का उदाहरण

सम्प्रदाय में परम्परा से मान्यता हैं तथा श्रीनिम्बार्क–प्रभा नामक ग्रन्थ में भी वर्णित हैं कि ३४ वें आचार्य श्री श्रीभटटदेवाचार्य जी महाराज ने श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा तथा अपना उत्तराधिकार अपने प्रमुख शिष्य श्री वीरमदेव जी को प्रदान किया। परन्तु दैव वशात श्रीवीरमदेव जी भ्रष्ट आचरण प्रकट करने लगे। मदिरापात्र हाथ में रखते चिताग्नि में भोजन सिद्ध करते। उनकी इस प्रकार की व्यतिक्रमता से दुःखित हो संत समाज ने श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा उनसे लेकर श्री श्रीभटटदेवाचार्य जी के प्रतापी शिष्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी को आचार्यपादासीन करके श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा उनको सौंप दी। कुछ काल पश्चात जब वीरमदेवजी ने अपने आचरण का पश्चाताप करके अनेको प्रायश्चित आदि द्वारा शुद्ध स्वरुप धारण किया तब श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी ने उनसे आचार्य पद तथा श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा पुनः सँभालने का निवेदन किया। परन्तु श्रीवीरमदेव जी ने कहा कि अपने पश्चाताप तथा निर्धारित प्रायश्चित कर्मों को करके श्रीसर्वेश्वर भक्ति द्वारा मैं अपना आत्मोद्धार भले ही कर सकता हूँ परन्तु इस अनादि वैदिक सम्प्रदाय के आचार्यपद पर बैठने की पुनर्योग्यता मुझमें नहीं आ सकती। इस प्रकार वैदिक विधि निषेध को ही सर्वोपरि मानकर स्वयं को अनाधिकारी जान आचार्यपद की प्रतिष्ठा आदि के लोभ का त्याग करने से श्रीवीरमदेव जी के नाम में त्यागी जुड़ गया तथा समस्त समाज उन्हें श्रीवीरमत्यागी नाम से सम्बोधित करने लगा। आपकी शिष्यपरम्परा अभी भी चल रही हैं।

श्रीश्यामशरणदेव जी यदि शुद्ध अंतःकरण से परम्परा का सम्मान करते हैं तो ऐसा ही महान उदाहरण स्वयं भी उपस्थित कर सकते हैं। क्योंकि पूर्वाचार्यों के इतने स्पस्ट वाक्यों द्वारा शास्त्रों की मर्यादा निर्धारित करते सिद्धान्त आचार्यपीठ प्रन्यास के संविधान एवं श्रीजी महाराज द्वारा लिखित अपने अंतिम इच्छापत्र में निर्दिष्ट अनिवार्य नियमानुसार श्रीश्यामशरण देव श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य पद पर एक क्षण भी बने रहने योग्य तो रहे ही नहीं हैं। अपनी इस स्वेच्छाचारिता से ये आचार्यपीठासीन तो अब नहीं रह सकते परन्तु अपने समस्त दुराचारों का प्रायश्चित कर श्रीसर्वेश्वर भक्ति परायण होकर जीवन जीते हुए शरणागति रूपक फल प्राप्त कर अपना उद्धार अवश्य ही कर सकते हैं परन्तु पद पर बैठने की निर्योग्यता बनी ही रहेगी ऐसा सभी शास्त्रों एवं सम्प्रदाय के महान पूर्वाचार्यगणों के श्रीवचनों से सिद्ध हैं।

प्रार्थना

षड्दर्शन के सभी श्रीआचार्यचरण!

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के सभी सन्त/महन्त वृन्द!

परम वैष्णव महानुभाव जन!

आप सभी से प्रार्थना हैं इन स्वेच्छाचारी मर्यादाहीन व्यक्ति को पदच्युत कर सुयोग्य व्यक्ति को पदासीन करने के सद्कार्य को संभव करने में संरक्षण प्रदान कीजिये।

आचार्यश्रीवृन्द!

आप स्वयं धर्म संरक्षक हैं। सनातन धर्म की मर्यादाओं के संरक्षक के रूप में इन सब परिस्थितियों से आपश्री को अवगत करते हुए करबद्ध निवेदन हैं की आपश्री अपनी आचार्यपीठ से इन श्रीश्यामशरण देव को श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर के रूप में अमान्य घोषित करें। तथा किसी भी ऐसे आयोजन में जो आपश्री की कृपा से आयोजित हो अथवा जिस आयोजन में आपश्री की गरिमामयी उपस्थिति हो उस मंच पर श्रीश्यामशरण देव उपस्थित न हो सके ऐसी अनुलंघनीय मर्यादा स्थापन हो।

संप्रदाय के वरिष्ठ महानुभाव किसी योग्य पात्र का चयन करने की प्रक्रिया में हैं। परन्तु जैसा आपश्री जानतें हैं इन सबमें किञ्चित समय लगना अवश्यसंभावी हैं। परन्तु उससे पूर्व इन श्रीश्यामशरणदेव का आप सभी धर्माचार्यों द्वारा बहिष्कृत एवं अमान्य घोषित किया जाना परमावश्यक हैं। अतः आपत्तिकाल को दृष्टिगत रख शीघ्र निर्णय लेने की कृपा करें।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के सभी सन्त/महन्त वृन्द !

श्रीनिम्बार्क भगवान की परंपरा पर आक्षेप लगने में जो भी निमित्त बनेंगे वे सत्य ही नाश को प्राप्त होंगे। आचार्य परम्परा की मर्यादा का हनन करने वाले शीघ्र ही अपनी दुर्गति प्राप्त करेंगे।

आप सभी से करबद्ध प्रार्थना हैं श्रीसर्वेश्वर प्रभु, श्रीनिम्बार्क परम्परा के प्रति अपनी निष्ठा को प्रथम ही नहीं अपितु एकमात्र लक्ष्य बनाकर श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की

रक्षा करें। अपने अपने स्थानों की रक्षा खूब कर ली, आज जिन श्रीसर्वेश्वर प्रभु के प्रताप को हम सभी उपभोग करतें हैं उन श्रीसर्वेश्वर प्रभु की मर्यादा रक्षा का प्रश्न उपस्थित हैं। पूर्ण प्राणपण से अपनी महान सम्प्रदाय परम्परा तथा आचार्य गद्दी के गौरव की रक्षा के निमित्त आगे आइये।

परम वैष्णव महानुभाव जन!

यह आचार्यपीठ किसी का निजी मंदिर – स्थान नहीं हैं जहाँ स्थानाधिकारी स्वेच्छाचारिता से मनमुखी हो सके तो आपको कष्ट न हो। यह हमारी महान परम्परा का केंद्र–विन्दु हैं, हमारे सम्प्रदाय के आधार श्रीसर्वेश्वर प्रभु के विराजित होने की स्थली हैं। हमारी अविच्छिन्न निष्कलंक आचार्य परम्परा की एकमात्र पीठ हैं। विकट स्थिति आप के समक्ष स्पष्ट हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य परम्परा एवं आचार्यपीठ के ही लोप हो सकने का अतीव भयानक संकट सम्मुख हैं। आप परम वैष्णव हैं परम्परा से श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय एवं श्रीआचार्यपीठ की रक्षा के प्रति निष्ठ हैं तथा श्रीजी महाराज को आप सभी अपना सर्वस्व मानते हैं अतः आपको यह परम महनीय दायित्व स्वतः ही प्राप्त हैं की आप श्रीआचार्यपीठ की मर्यादा संरक्षण में अपना योगदान देंगें। अपने सम्प्रदाय का यह आपत्तिकाल हैं इस समय सनातन धर्म की मर्यादा एवं कुलाचार की रक्षा हेतु आपका सहयोग इस कार्य को पूर्ण करने तथा समाज के संगठन के लिए अत्यंत अपेक्षित हैं।

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ न्यास के न्यासी गणों ने श्रीश्यामशरण देव जी को निम्न नोटिस अधिवक्ता के माध्यम से भेजकर अभिमत माँगा था। अब प्रन्यासीगण न्यास के विधान तथा श्री श्रीजीमहाराज जी के अंतिम इच्छापत्र अनुरूप अग्रिम कार्यवाही कर रहे हैं। आप सभी अपना अपना अभिमत प्रन्यासियों को पत्र द्वारा भेजकर उनको अपना सम्बल प्रदान करें।

श्रीसर्वेश्वर प्रभु सबका मङ्गल करें।

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ विराजित
श्रीश्यामशरणदेवाचार्य जी महाराज
प्रमुख कार्यवाहक प्रन्यासी
अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ प्रन्यास
श्रीनिम्बार्कतीर्थ, किशनगढ़, अजमेर, राजस्थान

विषय : श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय तथा श्रीनिम्बार्कपीठ विषयक मर्यादाओं की
अनियमितताओं के सम्बन्ध में।

महाराज श्री !

जैसा की आपको सुविदित हैं महान श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की आचार्यपीठ पर विराजित होने के लिए सुगठित शास्त्रोचित नियम व परम्पराएं विद्यमान हैं तथा ये नितांत रूपेण परिपालनीय हैं। ये सभी नियम अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ प्रन्यास के प्रलेख तथा जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज द्वारा दिनांक १२/०१.२००८ को निज हस्तकमल से लिखे गए इच्छापत्र में विशद रूप से वर्णित हैं। इन्ही परम्पराओं, आचार्यपीठ प्रन्यास के विधान तथा श्रीजी महाराज द्वारा लिखित इच्छापत्र के उत्तराधिकार से ही आपश्री को इस महान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ का उत्तरदायित्व सम्प्राप्त हुआ हैं। इस उत्तरदायित्व के फलस्वरूप श्रीनिम्बार्काचार्य पद तथा श्रीआचार्यपीठ और संप्रदाय के शास्त्रोचित सदाचार एवं परम्पराओं का संरक्षण आपश्री द्वारा प्राण-पण से होना अपेक्षित हैं।
यह दुर्दैव ही हैं कि विगत कुछ समय से इन नितांत रूपेण परिपालनीय एवं अनुलंघनीय नियमों के पालन में आपश्री द्वारा अवांछनीय अनियमितताएं किया जाना प्रकट हुआ हैं। हम इस अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ प्रन्यास के प्रन्यासी होने तथा इस श्रीआचार्यपीठ के अनन्य निष्ठावान अनुचर होने के कारण सम्प्राप्त दायित्व के अधिकार द्वारा आपश्री से अनुरोध करते हैं कि निम्न वर्णित विषयों में अपना अभिमत लिखित रूप में अवगत करावें।

१ . स्वयंपाकिता का जो पूर्वाचार्य-परम्परागत निर्धारित विशिष्ट नियम हैं उसका दृढ़ता पूर्वक परिपालन नितान्त रूपेण परम अनिवार्य हैं। आपश्री द्वारा इस परम अनिवार्य नियम का स्वस्थ अवस्था में भी व्यतिक्रम होता हैं। अनेक अवसरों पर आपश्री द्वारा इस व्यतिक्रम के हम साक्षी हैं। निरंतर ही इस नियम का उल्लंघन करने पर भी आपश्री का श्रीआचार्यपद पर बने रहने का अधिकार किस प्रकार बाधित नहीं होता हैं कृपया कर अवगत करावें।

२ . श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा - परिचर्या अपरस में आचार्य स्वयं ही करते हैं। यह परम अनिवार्य नियम हैं। अपितु श्रीनिम्बार्काचार्य होने की अर्हता ही श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा सम्प्राप्त होना हैं। आपश्री द्वारा इस महान परिपाटी का भी उल्लंघन होता हैं। यात्रा प्रवास आदि में भी आप श्रीसर्वेश्वरप्रभु को संग लिए बिना ही पधारते हैं। निरंतर ही इस नियम का उल्लंघन करने पर भी आपश्री का श्रीआचार्यपद पर बने रहने का अधिकार किस प्रकार बाधित नहीं होता हैं कृपया कर अवगत करावें।

३ . परम्परानुसार - नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का अनुपालन करते हुए पूर्ण विरक्तरूप से रहकर तदनुरूप वस्त्र परिधान आदि धारण करना अनिवार्य हैं। खेद हैं की आपके स्वरूप में आडम्बर का आधिक्य हैं जबकि आपको सादा श्वेत सूती तथा ऊनी वस्त्र ही धारण करने चाहियें। केशादि का मनमाना प्रसाधन करते हैं। आप जिस प्रकार केशों को भट करते हैं वह कैसी विधि हैं तथा कैसे साधु वेश के अनुरूप हैं कृपया कर अवगत करावें।

1

४. समुद्र पार यात्रा तथा म्लेच्छ देश निवास सर्वथा ही शास्त्र विरुद्ध आचरण है। आपश्री द्वारा उपरोक्त अनिवार्य नियमों के व्यतिक्रम किये जाने की सूचना पाकर प्रन्यासी गण तथा सम्प्रदाय के वरिष्ठ महानुभावों ने आपश्री को श्रीपदनारायण धाम, गिरवर, आबूरोड में दिनांक १२-१३ मार्च को चिंतन शिविर में सद्विवेक कराया। तथा विदेश गमन पर शास्त्रों का निषेध आपश्री के समक्ष ज्ञापित किया। परन्तु आपश्री इन सभी नियमों/मर्यादाओं का उल्लंघन करके समुद्र पार करके दिनांक ६-७ अप्रैल २०१८ से दिनांक ०१-०५-२०१८ तक संयुक्त राज्य अमेरिका चले गये। जबकि ऐसा कोई उदाहरण पूर्वकाल का उपस्थित नहीं है। अपितु षड्दर्शन में जो भी आचार्य समुद्र पार यात्रा से विदेश गमन किये हैं उन्हें अपने पद का त्याग करना पड़ा है। पुरीपीठाधीश्वर श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ जी तथा श्रीरामानंदाचार्य श्रीशिवरामाचार्य जी महाराज के प्रकरण प्रमाण हैं की समुद्र-लंघन के पश्चात आचार्यपद पर बने रहने की योग्यता नहीं रहती। आपश्री की विदेश यात्रा शास्त्र ही नहीं अपितु जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज द्वारा लिखित इच्छापत्र के भी उल्लंघन पूर्वक हुई है जिसमें आचार्यश्री ने मात्र भारत-वर्ष के ही विभिन्न अंचलों की मर्यादित यात्रा का विधान किया है।

अतः शास्त्र मर्यादा, उत्तराधिकारपत्र के विधान तथा वरिष्ठ महानुभावों के निषेध का सर्वथा उल्लंघन करने पर भी आपश्री का श्रीआचार्यपद पर बने रहने का अधिकार किस प्रकार बाधित नहीं होता है कृपया कर अवगत करावें।

अत्यंत विनम्र पूर्वक निवेदन है कि उपरोक्त विषयों पर अपना लिखित अभिमत पत्र प्राप्ति के 10 दिवस में अधोहस्ताक्षरकर्ताओं को रजिस्टर्ड पत्र द्वारा अवश्य ही प्रदान करें। जिससे की जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज द्वारा लिखित इच्छापत्र के अनुसार विधान कारित हो सके।

हस्ताक्षर

महन्त [illegible]
श्रीगोपाल मंदिर जूसरी, मकराना,
नागौर - 341505 राजस्थान
प्रन्यासी
अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ प्रन्यास
श्रीनिम्बार्कतीर्थ, किशनगढ़, अजमेर, राजस्थान

हस्ताक्षर

महन्त वृन्दावनदास
श्रीअलि माधुरी कुंज, रमणरेती, परिक्रमा मार्ग
वृन्दावन, मथुरा - 281121 उत्तरप्रदेश
प्रन्यासी
अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ प्रन्यास
श्रीनिम्बार्कतीर्थ, किशनगढ़, अजमेर, राजस्थान

2

श्रीजी महाराज जी द्वारा आचार्यपद के नियम निर्वहन की झाँकी। स्वयं–पाक श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा स्वयं करना आदि अनुलंघनीय नियमों का पालन आचार्यश्री अंतिम समय तक दृढ़तापूर्वक करते रहे थे।
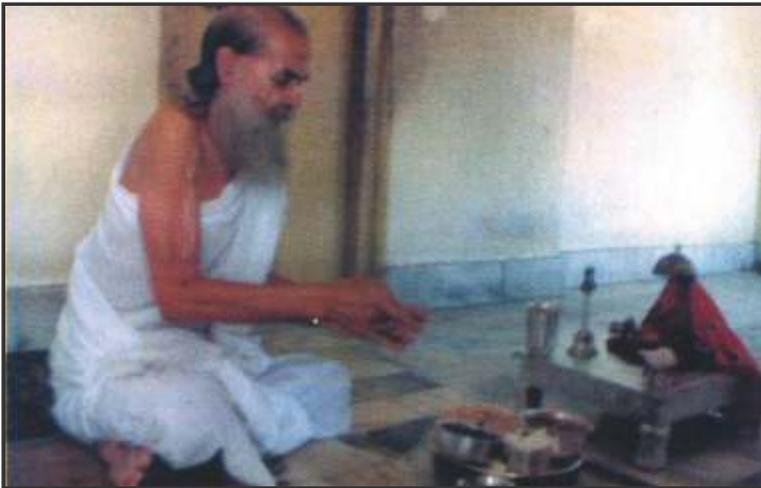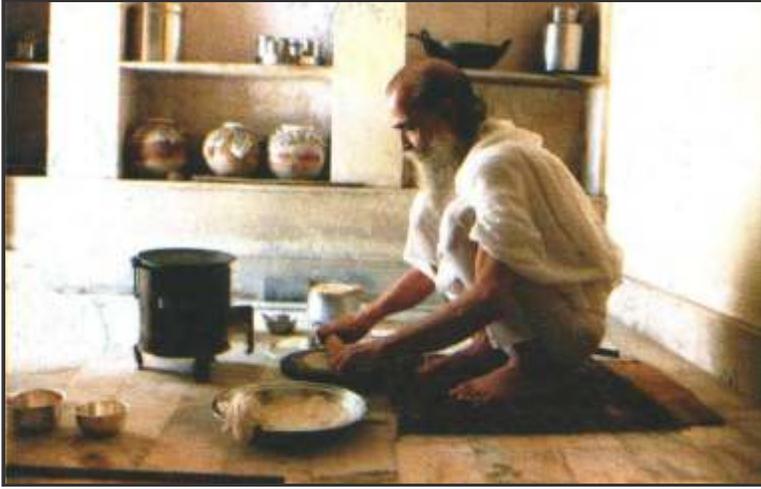
यह हैं तथाकथित आचार्य की विरक्त वेश निष्ठा

यह हैं तथाकथित आचार्य के स्वेच्छाचार पूर्ण केश विन्यास

या तो शिखा रखकर शेष मुंडित मस्तक तथा दाढ़ी–मूँछ को बनाकर रहे अथवा इन स्थानों के बाल बढाकर रहे। यह सदाचार एवं नियम विरुद्ध हैं कि इन स्थलों के केश आधे कतरे जाएँ, केश जब भी काटे जाएँ पूरे ही उतारे जाएँ ना कि उनकी छंटाई की जाए। शिखा का प्रमाण भी शास्त्रों में वर्णित गौ–खुर प्रमाण में ही हो मनमानी प्रकार से नहीं। विरक्त वेश अनिवार्य हैं तो किसी भी प्रकार की धातुओं के आभूषण रत्नादि धारण नहीं किये जा सकते।

श्री श्रीजीमहाराज जी के अंतिम इच्छापत्र का एक अंश

इच्छापत्र में जो आचार्यपीठ की व्यवस्थित निर्धारित मर्यादा के विपरीत आचरण करने पर आचार्यपदासीन के चयन को स्वतः ही निरस्त समझे जाने को समुचित एवं विस्तृत रूप से लेखबद्ध किया हैं।
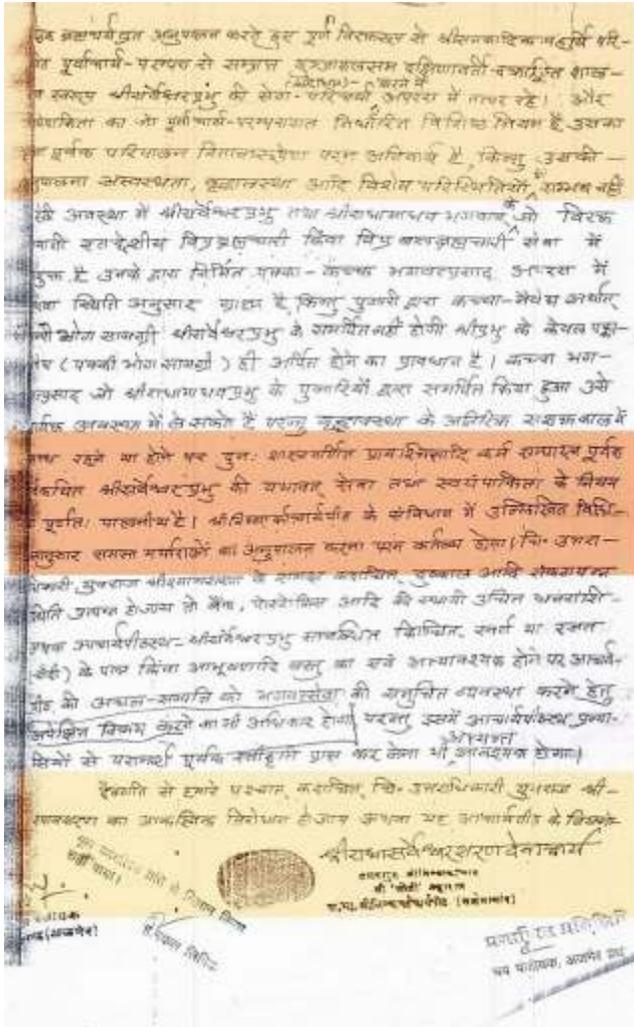
"आचार्यपीठ के नियम–आचार–विचार, मर्यादा आदि के सर्वथा विपरीत अविवेकतापूर्ण आचरण करने पर प्रन्यासियों, वरिष्ठ महानुभावों के सद्विवेक कराने पर भी न मानने, अथवा विरक्त न रहने की स्थिति में इस उक्त आचार्यपीठ के पद पर बने रहने का अधिकार युवराज श्रीश्यामशरण का निरस्त जावेगा, जिसे पदेन प्रन्यासीगण नियमानुसार निरस्त कर सकेंगे।"

चार-विचार, मर्यादा आदि के सर्वथा विपरीत अविवेकितापूर्ण आचरण
र प्रन्यासियों, वरिष्ठ महानुभावों के सद्विवेक कराने पर भी न मानने
विरक्त न रहने की स्थिति में इस उक्त आचार्यपीठ के पद पर बने रहने
युवराज श्रीश्यामशरण का निरस्त जावेगा, जिसे पदेन प्रन्यासीगण
र निरस्त कर सकेंगे। यदि उक्त युवराज अपनी आचार्यपीठ की पर–

श्रीश्यामशरणदेव जी कहते हैं कि हमें महाराजजी ने विदेश यात्रा की अनुमति प्रदान की थी। इनके इस कथन के सर्वथा असत्य होने का प्रमाण श्रीजी महाराज द्वारा लिखित इच्छापत्र हैं जिसमें महाराजश्री ने मात्र भारतवर्ष के ही अँचलों की मर्यादित यात्रा का विधान ही किया हैं।

१८

४ — अपने पूर्वाचार्यों के सिद्धान्त — उपासना आदि का अनुसरण पूर्वक पठन-पाठनादि के साथ उनके प्रचार-प्रसार में अपना समय देना हमारा परम कर्तव्य होगा।

५ — आचार्यपीठस्थ — चल-अचल सम्पदा की सर्वविध सुरक्षा रखते हुए साम्प्रदायिक वैष्णवों का यथायोग्य सम्मान करना हमारा परम कर्तव्य होगा, और वैष्णवोचित तुलसी कण्ठी, तिलक, शंख-चक्रादि मुद्रा धारण, [illegible] श्रृंगार वस्त्र परिधानादि धारण के साथ मन्त्रराजजाप, सन्ध्या-वन्दनादि नैमित्तिक कर्म निरत रहना हमारा विशेष पालनीय नियम रहेगा। आचार्यपीठस्थ या तत्सम्बन्धित भगवदीय चल-अचल सम्पदा का दुरुपयोग एवं अपव्यय आदि नहीं करेंगे।

उपर्युक्त इन ५ पाँच प्रतिज्ञाओं उत्तराधिकारी युवराज श्रीश्यामशरण द्वारा सम्पन्न होने पर वे सदा-सर्वदा तदनुकूल अपने पवित्र जीवन को श्रीभगवत्सेवा के साथ स्वसम्प्रदाय सुप्रचार के लिये भारत के आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रान्तों-अञ्चलों में अपनी मर्यादित यात्राओं के माध्यम से सर्वतोभावेन तत्पर रहें।

वर्तमान में — श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के देवस्थान प्रन्यासी वृन्दों की नामावली निम्न प्रकार है, यथा —

१ — कार्यवाहक प्रन्यासी — जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री "श्रीजी" महाराज — अ.भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) किशनगढ़, अजमेर [राजस्थान] हम स्वयं हैं।

२ — दूसरे सामान्य प्रन्यासियों में —
[illegible] श्रीहरिवल्लभदासजी शास्त्री — बड़ा मन्दिर — [illegible] (रैनवाल) चौमूं — जि. जयपुर (राजस्थान)

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य
श्री "श्रीजी" महाराज
अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (सलेमाबाद)

उप पंजीयक
किशनगढ़ (अजमेर)

श्री राधा सर्वेश्वरो विजयते

जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्याय नमः

श्रीमद् जगदगुरू श्री निम्बार्काचार्य स्वभूराम द्वाराचार्य पीठाधीश्वर
श्री राधा मोहन शरण देवाचार्य जी महाराज

मुख्यालय : श्री गिर्राज अन्नक्षेत्र, राधा सर्वेश्वर पीठ, डी.ए.वी. इन्टर कॉलेज के सामने, गोवर्धन, मथुरा (उ. प्र.)
मो.: 09829291907, 09410226641

शाखाऐं : 1. सर्वेश्वर गीता मन्दिर, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन, मथुरा (उ.प्र.) मो.: 09412661781
2. राधा मोहन कुंज, जानकी घाट, अयोध्या, फैजाबाद (उ.प्र.)
3. श्याम धाम आश्रम, रोड नं. 5, विश्वकर्मा थाना के सामने, श्याम मित्र मण्डल नगर, जयपुर (राज.) मो.: 09829291907, 09887141111
4. निम्बार्क पीठ, ध्वार, पो. पाण्डोरी तह. मोंठ, जिला-झांसी (उ.प्र) मो.: 09165325669

क्रमांक :

दिनांक 27/12/2018

वैष्णव चतुः सम्प्रदाय में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन अनादि वैदिक सत्सम्प्रदाय है। श्रीहंस भगवान् से आरम्भ होकर महर्षि श्रीसनकादिक, देवर्षि श्रीनारद और उनसे श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा होते हुए अद्यावधि अवस्थित हैं। ३५ वें आचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य महाराज के द्वादश प्रमुख शिष्यों में से श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी महाराज को उत्तराधिकार में श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा प्राप्त होने से प्राचीन परम्परानुसार श्रीनिम्बार्काचार्य पद प्राप्त हुआ तथा अन्य ग्यारह शिष्य द्वाराचार्य कहलाये। इन द्वादश द्वाराचार्यों तथा सोलहवें आचार्य श्री श्रीदेवाचार्यजी के द्वितीय शिष्य श्रीव्रजभूषणदेवजी की परम्परा में विराजित स्वामी श्रीहरिदास जी की शिष्य परम्परा से विशाल श्रीनिम्बार्क संप्रदाय का संगठन है। अविछिन्न आचार्य परम्परा के द्वारा धर्म तत्व को जानकर उसका अनुगमन करना हमारी परम्परा है। परम्परा का नाम ही सम्प्रदाय है। हमारी परम्परा में जो बात प्रचलित है वह ही हमारे लिए परम इष्ट है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय वेदादि शास्त्र की आज्ञा में ही रहकर धर्म पालन की शिक्षा देता है। तथा सामान्य वैष्णव ही नहीं अपितु स्वयं आचार्य को भी इन सभी नियमों विधि–निषेधों का दृढ़तापूर्वक अनिवार्य रूप से पालन करना आवश्यक है। श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज जी का समग्र जीवन इस सदाचार प्रणाली का अत्युत्तम उदाहरण है।
सम्प्रदाय की परम्परा, नियम, सदाचार, आचार्य पद एवं आचार्यपीठ की मर्यादा रक्षा हमारा परम इष्ट है तथा जो कोई भी इन सुव्यवस्थित मर्यादाओं का उल्लंघन करे वह शास्त्र वचनों के अनुसार नियमित किये जाने योग्य हैं। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय, श्रीसर्वेश्वर प्रभु एवं आचार्यपीठ परम्परा की परिपाटी जो अनादिकाल से चली आती है उसके संरक्षण में हम सदैव सर्वतोभावेन सन्नद्ध हैं।

"मर्यादा–रक्षा" पुस्तक में सम्प्रदाय की परम्परा, नियम, सदाचार के सभी पक्षों का समुचित वर्णन हुआ है। वर्णित सभी विषयों पर समाज को वृहद चिंतन द्वारा एकमत होकर सम्प्रदाय में बढ़ रही स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए प्रस्तुत होना चाहिए। परम्परा बचने से ही सभी का कल्याण संभव है।

राधामोहनशरण